धर्मायण

मूल्य : 45 रुपये

अंक 135

आश्विन, 2080 वि. सं.

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

पितृ-भक्ति विशेषांक

पितरों का श्राद्ध और तर्पण क्यों है आवश्यक?

श्रीकृष्णजन्माष्टमी के पावन अवसर पर महावीर मन्दिर में भागवत-महापुराण का पाठ

श्रीकृष्णजन्माष्टमी के पावन अवसर पर महावीर मन्दिर में भजन-कीर्तन का आयोजन

Title Code–BIHHIN00719

आलेख-सूची

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 135
आश्विन, 2080 वि. सं.
30 सितम्बर-28अक्टूबर 2023ई.

सम्पादक

भवनाथ झा

पत्राचार :
महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना—800001, बिहार
फोन: 0612—2223798
मोबाइल: 9334468400

E–mail:
dharmayanhindi@gmail.com

Website:
www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

Whatsapp:
9334468400

मूल्य : 45 रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 134, भाद्रपद, 2080 वि.सं.
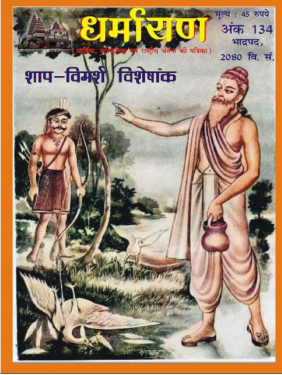
मैंने शाप-विमर्श विशेषांक पत्रिका तन्मयता के साथ पूरी पढ़ी। प्रायः सभी आर्ष ग्रन्थों की शाप कथाओं को लिया गया है। सम्पादकीय विमर्श 'शापादपि वरादपि' बहुत अच्छा लगा।

शैलकुमारी मिश्र, इलाहाबाद

शाप प्रकरणों के विमर्श पर सम्पूर्ण अंक देखा। प्रायशः इस विषय पर पहली बार ऐसी समेकित सामग्री सजायी गयी है। शाप को लेकर हल्ला अधिक मचाया जाता है, लोग इन कथाओं को पढ़ते नहीं हैं, ढंग से। हमें आश्चर्य लगा कि शाप और वरदान के जन्मदाता ब्रह्मा भी इससे वंचित नहीं रह पाते हैं तो फिर अन्य लोगों की क्या बिसात! इस पत्रिका में सन्दर्भ का समायोजन इसे शोध पत्रिका का दर्जा तो देता है पर आइ.एस.एस.एन. की कमी खलती है। सम्पादक का परिश्रम सर्वत्र झलकता है। पत्रिका छपनी चाहिए।

शोभनाथ मिश्र,
सोडाला, जयपुर, राजस्थान

शाप विशेषांक पढ़ा। देवता जब शाप देते हैं तो वह हमेशा जगत् के कल्याण के लिए होता है। क्रान्तदर्शी ऋषियों का शाप भी कल्याण के लिए होता है। कुछ ब्राह्मणों ने दण्ड देने के लिए भी शाप दिया है। ऐसे प्रसंग हमें उद्दण्डता से दूर रहने का सबक सिखाते हैं। आखिर पुराण की कथाएँ उपदेश ही तो देती हैं।

राजन सिंह, कुरावर, 465667, मध्यप्रदेश,.

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं.–+91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

'धर्मायण' का अग्रिम अंक **विविध विषयों** पर प्रस्तावित है। बहुत विशिष्ट आलेख इस अंक में हम प्रकाशित नहीं कर सके हैं, जिन्हें पाठकों के समक्ष रखने का लोभ संवरण मैं नहीं कर पा रहा हूँ। अतः अगले अंक में पितृश्राद्ध सम्बन्धी लेख भी आमन्त्रित हैं, हमें आशा है कि प्रस्तुत अंक को पढ़कर लोग विस्तार से पक्ष-विपक्ष में विमर्शात्मक आलेख प्रस्तुत करेंगे। गया में पिण्डदान के वर्तमान स्थलों पर एक विस्तृत विवरण उपलब्ध है उसका भी प्रकाशन अगले अंक में निर्धारित है। हमें आशा है कि धर्मायण के अन्य अंकों की तरह पाठकों और विद्वानों का हमें सहयोग मिलता रहेगा।

विस्तार से– पृ. 4 पर

धर्मायण के सभी अंक Google Books पर भी पूर्णतः पढ़ने हेतु उपलब्ध है। इससे 'धर्मायण' की अन्तरराष्ट्रीय ख्याति हुई है। शोधार्थी उन्मुक्त भाव से इन आलेखों का उपयोग कर पा रहे हैं, लेकिन वहाँ से डाउनलोड करने की स्वतन्त्रता नहीं दी गयी है। वहाँ चार अंकों के समूह में आप पढ़ सकते हैं।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तम्...

सम्पादकीय

—भवनाथ झा

प्रगति की अंधी दौड़ में आज हम अकेले होते जा रहे हैं। सौ साल पहले तक हम मनुष्य एक सामाजिक प्राणी थे। समाज टूटा तो संयुक्त परिवार बचा रहा। पचास साल पहले तक हम संयुक्त परिवार में रहे, फिर वह भी टूट गया। वृद्ध माता-पिता परिवार से बाहर के लोग प्रतीत होने लगे; न्यूक्लियर परिवारवाद आया। आज उससे भी बदतर स्थिति में पहुँच चुके हैं। बेटा अपने कमरे में मोबाइल पर व्यस्त है, बेटी अपने कमरे में। उन्हें साथ भोजन करना भी गवारा नहीं। यह किसी एक घर की बात नहीं, सामान्य स्थिति है। हर आदमी अकेला होता जा रहा है!

आखिर इस स्थिति का समाधान क्या है? एक विकल्प है— सनातन धर्म की अवधारणाएँ। वे अवधारणाएँ, जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्', का उद्घोष करती हैं! क्या वे क्या हमें फिर हमारे अकेलेपन को दूर नहीं कर सकती हैं! सनातन धर्म में कोई अकेला नहीं होता— निर्जन रेगिस्तान में भी उसके साथ देवता होते हैं, पितर होते हैं। देवता-पितर के बल पर वह हमेशा सदल-बल होता है, उसमें हिम्मत होती है, अकेले में भी वह भीड़ में होता है, ऐसी भीड़ में जहाँ उसके साथ सारे के सारे रक्षक होते हैं।

आश्विन का मास है। पहला पक्ष पितरों को समर्पित है तो दूसरा पक्ष देवी माँ दुर्गा को। देवता-पितर दोनों का समन्वय इस मास में है। पितर की अवधारणा हमें एक दूसरे को जोड़ती है। पिता-पितामह-प्रपितामह ये तीन पीढ़ियाँ और इनके ऊपर चार पीढ़ियाँ, जिन्हें हम विश्वेदेव कहते हैं, इन सात पीढ़ियों को तो हमने 'सपिण्ड' कहा है। हम एक ईकाई के हैं। आप जोड़ लीजिए— इन सात पीढ़ियों के वंशज कितने हैं! पुरुष कितने हैं और कितनी बेटियाँ कहाँ-कहाँ ब्याही गयीं...उनके कितने संतान हैं। जोड़ें तो हजार तो कम से कम हो जायेंगे। संबन्धियों का यह संसार फैला हुआ है। ये तो एक परिवार के सदस्य हैं।

हम पितृपक्ष में सनातन धर्म के अनुरूप पितरों को जल देते हैं तो कहते हैं—

ॐ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः॥

ब्रह्म से लेकर तृण तक जो भी देवता, पितर या मनुष्य हुए हैं, माता, मातामह आदि जो हमारे पितर हैं वे सभी तृप्त हों।

अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम्।
आ ब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम्॥

अतीत के करोड़ों कुलों के, सातों द्वीप के निवासीगण, ब्रह्म से भुवनों के लोगों को यह तिल और जल प्राप्त हो।

येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवा:।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मया दत्तेन वारिणा॥

जो मेरे बन्धु-बान्धव हों या न हों या जो अन्य जन्म के बान्धव हो वे सभी मेरे द्वारा दिये गये इस जल से तृप्त हों।

इस अवधारणा को 'पौराणिकों की पोललीला' कहकर पूर्णतः खण्डित किया गया तथा 'मृत्युभोज' शब्द गढ़ कर श्राद्ध के विरुद्ध एक आन्दोलन चलाया गया। **"भस्मान्तं शरीरम्"** को उद्धृत कर मृत पूर्वजों का अस्तित्व विखण्डित कर दिया गया; ताकि हम अपनी पीढ़ी दर-पीढ़ी की किसी भी परम्परा को नकारने के लिए तैयार हो सकें।

आज विमर्श आवश्यक है कि क्या सनातन धर्म में पूर्वजों की अवधारणा गलत है? क्या उनका अस्तित्व मरणोपरान्त नहीं रहता है, क्या उनका स्मरण हमें नहीं करना चाहिए? ये सारे प्रश्न आज हमारे सामने हैं। हमने उत्तर ढूँढने का प्रयास किया है। यदि वे हैं तो फिर हमारे साथ हैं। जब हम प्रतिदिन उन्हें पितृ–तर्पण में जल देते हैं तो एक और पिता-पितामह-वृद्धप्रपितामह-विश्वेदेव की सात पीढ़ी यानी 14 लोग और दूसरी ओर मातामहादि 6 लोग हमारे पीठ पर खड़े प्रतीत होते हैं। इतना ही नहीं, जब 'आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त' को हम जल अर्पित करते हैं तो सचमुच सम्पूर्ण विश्व हमारी हथेली पर रखे आँवले के समान प्रतीत होने लगता है और हम कह उठते हैं– वसुधैव कुटुम्बकम्। यही हमारा विस्तार है, हमें गौरव बोध होता है कि हम सनातनी हैं।

आज यह भी ज्वलन्त प्रश्न है कि पितर का जो अस्तित्व वैश्विक स्तर पर है, जो अस्तित्व भारत की जनजातियों में अपने प्राकृतिक रूप में है, वह अस्तित्व हिन्दू धर्म में सुधार लाने के क्रम में क्यों खण्डित किया गया और इसके लिए वैदिक मन्त्र के अर्थ तक बदल दिये गये? और तो और, ब्राह्मण ग्रन्थों से प्रमाणित पदपाठ तक परिवर्तित कर दिये गये! यह अंक इन्हीं ज्वलन्त प्रश्नों के उत्तर ढूँढने की दिशा में एक प्रयास है।

***

लेखकों से निवेदन

'धर्मायण' का अग्रिम अंक **विविध विषयक** प्रस्तावित है। इस अंक के लिए अनेक ऐसे आलेख प्राप्त हुए हैं, जिन्हें हम स्थानाभाव के कारण स्थान नहीं दे सके हैं। इनमें निम्नांकित आलेख प्रमुख हैं—

1. श्री ब्रजमोहन जावलिया के द्वारा अंक से शब्द के लेखन प्रणाली पर किये गये कार्य सम्बन्धी आलेख।
2. श्री अरुण कुमार उपाध्यायजी का एक आलेख अंक से शब्द लेखन तथा शब्द से अंक लेखन की विधि पर आ गया है। ऐसे आलेख अग्रतर शोधकर्ताओं के लिए बहुत उपयोगी होंगे।
3. डा. राधानंद सिंह ने श्राद्धकर्म की आवश्यकता पर सुन्दर आलेख भेजा है, जिसे हम इस अंक में नहीं रख सके हैं।
4. गया में पिण्डदान के स्थलों पर पर्यटन की दृष्टि से आलेख हमारे पास सुरक्षित है जो वर्तमान स्थित का बोध कराता है।
5. हमें आशा है कि इस अंक में प्रकाशित रचनाओं पर आगे विद्वान् अपना विमर्श प्रस्तुत करेंगे, उनका स्वागत है।
6. पितृ-श्राद्ध की दृष्टि से दीपावली के महत्त्व पर भी एक आलेख अपेक्षित होगा। इस प्रकार अगले अंक में विविध विषयों के महत्त्वपूर्ण आलेख प्रकाशित करने की योजना है।

***

चार दिनों के प्रस्तावित श्राद्ध की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

आचार्य किशोर कुणाल

दलित-देवो भव, Ayodhya Revisited आदि अनेक ग्रन्थों के रचयिता।

विशेष परिचय हेतु : https://www.kishorekunal.com/

लेखक ने प्रमाण के साथ सिद्ध किया है कि प्राचीन उपनिषदों में वर्णित आत्मतत्त्व एवं पुनर्जन्म की अवधारणा के आलोक में श्राद्ध की कोई अनिवार्यता नहीं है, फिर भी श्राद्धकर्म अवश्य होना चाहिए। लेखक ने प्रचलित पद्धति और प्रेतत्वविमुक्ति की अवधारणा को नकारते हुए चार दिनों की एक श्राद्ध-पद्धति ऐसे लोगों के लिए बनायी है, जो लोग समय के अभाव की बात कहकर आर्यसमाज की पद्धति से शान्ति-मन्त्रों से हवन कराकर उसे ही वैदिक-श्राद्ध समझ लेते हैं। लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि जो लोग प्रचलित पद्धति से 12 दिनों का श्राद्ध करते हैं, *"उनकी आस्था एवं विश्वास पर हम आघात नहीं करना चाहते; किन्तु आज अधिकतर लोगों के पास या तो समयाभाव है या गाय की पूँछ पकड़ कर कल्पित वैतरणी पार करने में अनास्था। अतः ये आर्य-समाजी पद्धति से तीन दिनों में श्राद्ध कर लेते हैं और तीसरे दिन कुछ वैदिक मन्त्रों का पाठ करा कर और कुछ हवन कर श्राद्ध की इतिश्री कर लेते हैं।"* ऐसे लोगों के लिए लिखी गयी यह पद्धति महावीर मन्दिर प्रकाशन से शीघ्र प्रकाश्य है। इसी पुस्तक की सैद्धान्तिक भूमिका यहाँ विमर्श हेतु प्रस्तुत है।

(1) विषय प्रवेश

यह शाश्वत सत्य है कि जिसने जन्म लिया है, उसको मृत्यु का सामना करना ही पड़ेगा। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

—गीता : 2.27

अर्थात् जो जन्मा है, उसकी मृत्यु निश्चित है और जो मरा है उसका जन्म निश्चित है। यह ध्रुव है, अपरिहार्य है; अतः जो अपरिहार्य है, जिसका टालना सम्भव नहीं है, उसके लिए चिन्ता करना उचित नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को मृत्यु के बारे में एक और सिद्धान्त समझाया— जैसे व्यक्ति पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्रों का धारण करता है, वैसे ही आत्मा इस देह-रूपी पुराने वस्त्र का त्याग कर नवीन जन्म का नूतन परिधान पहन लेती है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

—गीता : 2.22

कठोपनिषद् में नचिकेता ने यम से तीसरा वर माँगने के क्रम में यह प्रश्न किया था— 'मृत लोगों के बारे में यह संशय है कि कुछ लोग कहते हैं कि मृत्यु के बाद आत्मा रहती है और कुछ कहते हैं कि नहीं रहती।

अतः आपसे उपदेश ग्रहण कर मैं इसे भली भाँति समझ लूँ कि वास्तविक स्थिति क्या होती है, यह तीसरा वर मैं माँगता हूँ।'

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽ-
स्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः॥[1]

यमराज ने नचिकेता को समझाया था—

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥[2]

यह चेतन स्वरूप आत्मा (विपश्चित्) न उत्पन्न होती है, न नष्ट होती है। यह नहीं जाना जा सकता है कि यह कहाँ से आयी और क्या बनी। यह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है, प्राचीन है और शरीर के मारे जाने पर भी यह मारी नहीं जाती।

यम ने नचिकेता को आगे समझाया—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥[3]

जिसका जैसा कर्म होता है और जिसका जैसा भाव प्राप्त होता है, वैसे ही प्राणी योनियों में शरीर धारण करते हैं या स्थाणु-भाव को प्राप्त होते हैं।

इस शाश्वत ज्ञान को कृष्ण ने अर्जुन को इन शब्दों में समझाया है—

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

—गीता : 2.20

यह आत्मा न तो जन्म लेती है और न मरती है और न ही उत्पन्न होकर फिर होनेवाली है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह मारी नहीं जाती।

समग्र हिन्दू समाज गीता की इस शाश्वत वाणी से परिचित है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

—गीता : 2.23

शास्त्र इसे काटते नहीं (काट सकते नहीं), पावक इसे जला नहीं सकता, पानी भिगो नहीं सकता और हवा इसे सुखा नहीं सकती।

विश्व के प्राचीनतम ऋग्वेद में भी पुनर्जन्म का सिद्धान्त मिलता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में ऋषि की प्रार्थना है—

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु॥

—ऋग्वेद : 10.15.1

जो पितर (पूर्वज) पृथ्वी पर हैं, वे उन्नत स्थान को प्राप्त करें। जो स्वर्ग में— उच्च स्थान में हैं, वे वहीं रहें, जो मध्यम स्थान का आश्रय करके रहे हैं, वे उच्च स्थान को— पद को प्राप्त करें और जो सोमरस पीते हैं और ऋत (सत्य) के जानकार तथा शत्रुरहित पितर हैं वे सब यज्ञकाल में हमारी रक्षा करें।

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य
ये पूर्वासो य उपरास ईयुः।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता
ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु॥

—ऋग्वेद :10.15.2

1 कठोपनिषद् प्रथम वल्ली 1.1.20
2 कठोपनिषद् प्रथम वल्ली 1.2.18
3 कठोपनिषद् प्रथम वल्ली 1.2.18

जो पहले उत्पन्न होकर मृत हुए, और जो अनन्तर (पीछे) उत्पन्न होकर मरे, जो पृथिवी पर राजस कार्य करके उत्तम पदों पर विराजमान हैं और जो निश्चय ही समृद्ध बान्धवों में हैं, उन सब पितरों (पूर्वजों) को आज यह नमस्कार है।

ये न पितुः पितरो ये पितामहा
य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम्।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां
तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ॥49 ॥

—अथर्ववेद : 18.2.49

जो हमारे पिता के पिता और पितामह हैं जो अन्तरिक्ष में प्रवेश कर गये हैं और जो पृथ्वी पर रहते हैं या स्वर्ग में हैं, उन सबके प्रति श्रद्धापूर्वक नमस्कार निवेदित करते हैं।

इन वैदिक मन्त्रों से स्पष्ट है कि मृत्यु के अनन्तर पूर्वज अनेक बार जन्म ग्रहण करते रहे हैं; वे वर्तमान धारणा के पितरों की तरह भटकते नहीं रहते हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् के चतुर्थ अध्याय के चतुर्थ पाद में विवेचना की गयी है कि कोई जीव नये शरीर में कैसे जन्म ग्रहण करता है। यहाँ जलीय जीव जोंक का दृष्टान्त दिया गया है कि जिस प्रकार जोंक एक घास पर सरकता हुआ उसके अन्तिम छोर पर जाता है और तब उसे छोड़ने से पहले ही दूसरे घास के शिरे को पकड़ लेता है। इसी प्रकार आत्मा भी प्रथम शरीर को छोड़ने से पहले दूसरा शरीर धारण कर लेती है। यही जीवों की भी देहारम्भ विधि है—

तद्यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तं गत्वान्यमाक्रम-माक्रम्यात्मानमुपसं हरत्येवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याविद्यां गमयित्वान्यमाक्रममाक्रम्यात्मान-मुपसंहरति ॥3 ॥[4]

इसी दृष्टान्त को भागवत में भी स्पष्ट किया गया है—

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ 38 ॥

हे वीर, प्राणियों की मृत्यु निश्चित है, वह आज हो या सौ वर्षों के बाद। इस शरीर के साथ उसकी मृत्यु होती है।

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥39 ॥

शरीर धारण करने वाला वह जब मृत्यु के बाद पंचत्व को प्राप्त करता है तब अपने कर्म के वशीभूत होकर दूसरा शरीर पाने के बाद पूर्व शरीर का त्याग करता है।

व्रजन् तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति।
यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥ 40 ॥[5]

जिस प्रकार जलूका यानी जोंक एक कदम चलता है फिर ठहरता है तब फिर एक कदम आगे बढ़ाता है उसी प्रकार यह आत्मा भी कर्मगति के अनुसार चलती है। इससे स्पष्ट है कि जीव की गति उसके अपने कर्म के अनुसार अवश्य होती है।

आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म के सिद्धान्त का समर्थन बृहदारण्यक-उपनिषद् के उपर्युक्त उद्धरण के बाद उसकी स्थित की व्याख्या इस प्रकार की गयी है—

"तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रामपादायान्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं तनुत एवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याविद्यां गमयित्वान्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं वा गान्धर्वं वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वेत्येषां वा भूतानाम्।"[6]

अर्थ— जैसे सोनार, सोने का एक टुकड़ा लेकर, उससे अधिक नवीन और चमकीला रूप

4 बृहदारण्यक उपनिषद् : 4.4.3.
5 श्रीमद्भागवतपुराणम्/स्कन्धः 10/पूर्वार्धः/अध्यायः 1
6 The works of Shankaracharya, vol. 9, बृहदारण्यक उपनिषद् : IV.4.4. बालासुब्रह्मण्यम, टी.के. (सम्पादक) वाणीविलास प्रेस, श्रीरङ्गम्, पृ. 610.

बनाता है, वैसे ही यह आत्मा शरीर का त्याग कर नवीन, कल्याणतर रूप प्राप्त करता है जो पितृ, गन्धर्व, देव, प्राजापात्य, ब्रह्म या किसी प्राणी का रूप होता है।

अतः गीता, उपनिषद्—जैसे प्रामाणिक धर्मशास्त्रों के अनुसार मनुष्य मृत्यु के बाद अपने कर्मों के अनुसार पुनर्जन्म प्राप्त करता है अथवा निष्काम भक्ति भाव वाले भगवान् में समाहित हो जाते हैं यानी ब्रह्मलीन हो जाते हैं। योगवासिष्ठ में वाल्मीकि कहते हैं—

आशापाशशताबद्धा वासनाभावधारिणः।
कायात् कायमुपयान्ति वृक्षात् वृक्षमिवाण्डजाः॥[7]

यानी जैसे पक्षी एक वृक्ष से उड़कर दूसरे वृक्ष पर चले जाते हैं, वैसे ही सैकड़ों आशा रूपी पाशों में बँधे हुए तथा वासनाओं को हृदय में धारण किये हुए जीव एक शरीर से दूसरे शरीर में चले जाते हैं।

भरतजी द्वारा पिता दशरथ के निधन की सूचना पाकर चित्रकूट में भगवान् श्रीराम ने अनुज भरत से कहा था—

स जीर्णमानुषं देहं परित्यज्य पिता हि नः।
दैवीमृद्धिमनुप्राप्तो ब्रह्मलोकविहारिणीम्॥[8]

हमारे पिता ने जरा-जीर्ण मानव-शरीर का परित्याग करके दैवी शक्ति प्राप्त की है, जो ब्रह्मलोक में विहार करनेवाली है।

अपने धर्म में निधन के बाद स्वर्ग एवं नरक गमन का सिद्धान्त भी है। जो व्यक्ति सोचते हैं कि उनके माता-पिता या पूर्वज अपने पापपूर्ण कार्यों के कारण नरक गये हैं और उनके उद्धार के लिए श्राद्ध करना चाहते हैं, उन्हें भी चाहिए कि इतना पर्याप्त परोपकार उनके नाम से करें कि उनकी स्थिति में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाये।

'धर्मशास्त्र का इतिहास' में प्रसिद्ध विद्वान् भारत-रत्न पाण्डुरंग वामन काणे ने लिखा है—

"A firm believer in the doctrine of Karma, punarjanma (re-incarnation) and Karma-Vipåka may find it difficult to reconcile that doctrine with the belief that by offering balls of rice to his three paternal ancestors a man brings gratification to the souls of the latter. According to the doctrine of punarjanma (as very succinctly put in Br. Up. IV 4.4 and Bhagvadgita 2.22) the spirit leaving one body enters into another and a new one. But the doctrine of offering balls of rice to three ancestors requires that the spirits of the three ancestors even after the lapse of 50 or 100 years are still capable of enjoying in an ethereal body the flavour or essence of the rice balls wafted by the wind."[9]

अर्थात् कर्म, पुनर्जन्म और कर्म-विपाक के सिद्धान्त में दृढ़ विश्वास रखनेवाले आस्तिकों को इस सिद्धान्त को सुलझाना मुश्किल हो सकता है कि उनके तीन पितरों के लिए भात के पिण्डों को अर्पित करके एक मनुष्य आत्माओं को सन्तुष्टि देता है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार (जैसा कि बहुत ही संक्षिप्त रूप में बृहदारण्यकोपनिषद् IV. 4.4 और भगवद्गीता 2.22 में रखा गया है) एक शरीर को छोड़कर आत्मा एक नवीन रूप में प्रवेश करती है। लेकिन तीन पूर्वजों को चावल का पिण्ड अर्पित करने का सिद्धान्त यह है कि 50 या 100 वर्ष की समाप्ति के बाद भी तीन पूर्वजों

7. योगवासिष्ठ : 4.43.26, श्रीकृष्णपन्तशास्त्री (सम्पादक एवं हिन्दी अनुवादक), अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, संवत् 2004 (1948ई.), पृ. 1927.
8. वाल्मीकि-रामायण, अयोध्याकाण्ड : 105.37, गीताप्रेस संस्करण।
9. Kane, P.V., History of Dharmasastra, Vol. IV, Bandarkar Oriental Research Institute, Pune, 1953, p. 335.

की आत्माएँ एक अभौतिक शरीर में भी वायु के द्वारा भात के पिण्डों की प्रवहमान सुगन्धि एवं स्वाद का आनंद लेने के लिए सक्षम हैं।”

जब हम उपनिषदों को वेदों का सार-तत्त्व मानते हैं और गीता को उपनिषद्-रूपी गायों से दुहा हुआ अमृत मानते हैं, तब बाद के निबन्धकारों के नियमों में उलझे रहने का कितना औचित्य है?

जब हमारी प्रचलित वैदिक, शास्त्रीय मान्यता रही है कि प्राणी मरने के तुरत बाद दूसरी योनि में अपने कर्मों के अनुसार प्रवेश कर जाता है, तब उसे प्रेत-योनि प्राप्त कैसे होगी? हाँ, कुछ प्राणी ऐसे हैं जो अपने उत्कृष्ट कर्मों के कारण मोक्ष प्राप्त करते हैं और कुछ ऐसे हैं जो निकृष्ट कर्मों के कारण भूत-प्रेत योनियों को प्राप्त होते हैं; किन्तु हम शास्त्रों एवं शाश्वत हिन्दू सिद्धान्तों से भटक कर अपने पूज्य माता-पिता को प्रेत योनि में भटकाकर उन्हें कष्ट क्यों देते हैं और फिर उन्हें काल्पनिक कष्ट से छुड़ाने के लिए प्रचलित श्राद्ध क्यों करते हैं? भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता, 17.4 में कहा है—

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥

जो सात्त्विक पुरुष हैं वे देवताओं की पूजा करते हैं, जो राजसी गुणों से भरे हैं वे यक्षों और राक्षसों की पूजा करते हैं और जो तामसिक हैं, वे प्रेतों, भूतों की पूजा करते हैं।

क्या हम अपने पूर्वजों को श्रेष्ठ पदों से विचलित कर उन्हें प्रेत-योनि में डाल देंगे और हम प्रेतों की पूजा, पिण्डदान कर तामसिक कोटि में पड़े रहेंगे? प्रामाणिक धर्मशास्त्रों का ज्ञाता ऐसा नहीं चाहेगा।

(2) श्राद्ध क्यों करना चाहिए?

अब प्रश्न उठता है कि इतना जान लेने के बाद भी क्या श्राद्ध करना चाहिए? उत्तर है कि हाँ, श्राद्ध अवश्य करना चाहिए, किन्तु प्रचलित रूप में नहीं। अपने मृत परिजनों एवं पितरों का श्राद्ध श्रद्धापूर्वक करना चाहिए; किन्तु उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए और उनके पुनर्जन्म में उनके कल्याण हेतु; न कि उन्हें प्रेत-योनि में रखकर उससे छुटकारा पाने के लिए। जिस माता-पिता ने हमारा जन्म दिया और पालन-पोषण कर वर्तमान स्थिति में लाया तथा जिन पूर्वजों के उपार्जन के कारण हमें समृद्धि मिली, उनके प्रति श्राद्ध करना हमारा कर्तव्य बनता है। विष्णु-पुराण की इस सनातन वाणी का स्मरण सदैव रखना चाहिए—

मातापितृभ्यां सर्वेण जातेन तनयेन वै।
ऋणं वै प्रतिकर्तव्यं यथायोगमुद्धाहृतम्॥

(विष्णु पर्व, 26.28)

माता-पिता से उत्पन्न सभी सन्तानों का कर्तव्य है कि उनके ऋणों को यथायोग्य ढंग से उतार देना चाहिए।

वाल्मीकि-रामायण में भगवान् श्रीराम ने माता-पिता के महत्त्व को इन शब्दों में प्रतिपादित किया है—

यन्मातापितरौ वृत्तं तनये कुरुते सदा।
न सुप्रतिकरं तत् तु मात्र पित्रा च यत्कृतम्॥

–अयोध्याकाण्ड, 111. 9

माता और पिता पुत्र के प्रति जो सदैव स्नेहपूर्ण व्यवहार करते हैं, उसका बदला सहज ही नहीं चुकाया जा सकता।

महाभारत में महर्षि व्यास ने माता की महिमा पृथ्वी से अधिक और पिता को आकाश से भी ऊँचा बतलाया है—

माता गुरुतरा भूमेः खात् पितोच्चतरस्तथा॥

–वनपर्व, 313.60

अतः माता-पिता के प्रति श्रद्धांजलि देने के लिए, उनके उपकारों से उऋण होने के लिए श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। पहली बार माता या पिता के निधन के बाद और दूसरी बार उनकी पुण्यतिथि पर उनकी स्मृति संजोकर।

'श्राद्ध' श्रद्धा शब्द में अण् प्रत्यय (श्रद्धाहेतुत्वेनास्त्यस्य अण्) के योग से बनता है। पाणिनि के सूत्र प्रयोजनम् (5.1.108) पर व्याख्या इस प्रकार की गयी— **"श्रद्धा प्रयोजमानस्य इति श्राद्धम्"** यानी श्रद्धा प्रयोजन है जिस कार्य का, वह श्राद्ध है।

(3) 'श्राद्ध' एवं 'पितर' शब्दों की व्याख्या

(क) पाणिनि के अनुसार **"श्रद्धा प्रयोजनमस्य इति श्राद्धम्"** (5.1.108 सूत्र 'प्रयोजनम्' पर व्याख्या) श्रद्धा प्रयोजन है जिसे 'कृत्यरत्नाकर'[10] में देवल के इस श्लोक को उद्धृत किया गया है।

(ख) प्रत्ययो धर्मकार्येषु तथा श्रद्धेत्युदाहृता।
नास्ति ह्यश्रद्धधानस्य धर्मकृत्ये प्रयोजनम्॥

जिन धर्मकार्यों में विश्वास हो और जो श्रद्धा से अभिभूत हो, वही श्राद्ध है; न कि अश्रद्धा से किये धर्मकार्य।

(ग) हेमाद्रि ने श्राद्धसूत्र में कात्यायन के इस वचन को उद्धृत किया है—

"श्रद्धान्वितः श्राद्धं कुर्वीत शाकेनापि।"[11]

यानी श्रद्धा से सम्पन्न व्यक्ति साग से भी श्राद्ध करें।

(घ) बृहस्पति ने कहा है—

"श्रद्धया दीयते यस्मात् श्राद्धं तेन निगद्यते॥"[12]

यानी श्रद्धापूर्वक जो दिया जाता है, उसे श्राद्ध कहते हैं।

धर्मशास्त्रकारों ने श्राद्ध की परिभाषा इस प्रकार दी है। कमलाकर भट्ट ने 'निर्णयसिन्धु' में मरीचि को उद्धृत किया है—

"श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम्।"[13]

तथा हेमाद्रि द्वारा बृहस्पति को उद्धृत किया गया है—

"श्रद्धया दीयते परमाच्छ्राद्धं तेन निगद्यते।"[14]

इसका भावार्थ यह है कि श्रद्धापूर्वक जो दिया जाता है या किया जाता है, वह श्राद्ध है। यदि उसमें श्रद्धाभाव नहीं है, तो वह श्राद्ध नहीं है।

गीता के 17 वें अध्याय के द्वितीय श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥

प्राणियों की स्वाभाविकी श्रद्धा तीन प्रकार की होती है— सात्त्विकी, राजसी और तामसी।

गीता के 17वें अध्याय के चौथे श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनः॥

सात्त्विक पुरुष देवताओं की पूजा करते हैं, राजसी पुरुष यक्षों और राक्षसों की पूजा करते हैं और जो तामसिक पुरुष हैं वे भूतों और प्रेतों की पूजा करते हैं।

अपने पूज्य परिजनों एवं पितरों को प्रेतकोटि में लाकर और उनकी पूजा करके हम तामसिक जनों की श्रेणी में क्यों आयें?

माता-पिता साक्षात् देव (**मातृदेवो भव, पितृदेवो भव**— तैत्तिरीय उपनिषद्) माने गये हैं, अतः मृत्यु के बाद श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा करके हम सात्त्विक श्रेणी में रहना पसन्द करेंगे।

10. चण्डेश्वर, म.म., कृत्यरत्नाकर, (14वीं शती) कमलकृष्ण स्मृतितीर्थ (सम्पादक), (1925ई.) एसियाटिक सोसायटी कोलकाता, पृ. 16.
11 हेमाद्रि, चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड, श्राद्धकल्प, प्रथम भाग, अध्याय 10, यज्ञेश्वर स्मृतिरत्न एवं कामाख्यानाथ तर्करत्न (सम्पादकद्वय), कोलकाता, 1809 शक- 1888ई., पृ. 1039.
12 बृहस्पति स्मृति, श्राद्धकाण्ड, 36. रंगास्वामी आयंगर (सम्पादक), बड़ोदा, 1941ई., पृ. 331.
13 भट्ट कमलाकर, निर्णयसिन्धु, तृतीय परिच्छेद उत्तरार्द्ध, निर्णयसागर प्रेस, 1901ई., पृ. 279
14 हेमाद्रि, चतुर्वर्गचिन्तामणि, अध्याय 4, उपर्युक्त, पृ. 153.

“श्राद्ध के विषय में एक धारणा प्रमुख है और वह प्रशंसा के योग्य भी है, वह है अपने प्रिय एवं सन्निकट सम्बन्धियों के प्रति स्नेह एवं श्रद्धा की भावना।”

महामहोपाध्याय पाण्डुरंग वामन काणे ने भी अपनी पुस्तक ‘धर्मशास्त्र का इतिहास’ में इसपर अपना सुन्दर विचार निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया है—

“अब प्रश्न यह है कि बीसवीं शताब्दी में श्राद्धों के विषय में क्या किया जाना चाहिए। यह देखने में आता है कि आजकल बहुत से ब्राह्मण पञ्चमहायज्ञ (जो प्रति दिन किये जाने चाहिए) भी नहीं करते, किंतु वे अपने पितरों के लिए कम-से-कम प्रति वर्ष श्राद्ध करते हैं। निम्न बात सभी प्रकार के लोगों के लिए कही जा सकती है, और यह मध्यम मार्ग का द्योतक है। जो लोग श्राद्ध-कर्म में विश्वास रखते हैं और यह समझते हैं कि ऐसा करने से मन को शान्ति मिलती है, उन्हें कम विस्तार के साथ इसका सम्पादन करना चाहिए और मनु (3.125-126), कूर्म. (2.22.27) एव पद्म. (5.9.98) के शब्द स्मरण रखने चाहिए, जो इस प्रकार हैं— श्राद्ध में अधिक व्यय नहीं करना चाहिए, विशेषतः आमन्त्रित होनेवाले ब्राह्मणों की संख्या में। जिन लोगों का विश्वास आधुनिक भावनाओं एवं अंग्रेजी शिक्षा के कारण हिल उठा है या टूट चुका है, या जिन लोगों का कर्म एवं पुनर्जन्म में अटल विश्वास है उन्हें एक बात स्मरण रखनी है। श्राद्ध के विषय में एक धारणा प्रमुख है और वह प्रशंसा के योग्य भी है, वह है अपने प्रिय एवं सन्निकट सम्बन्धियों के प्रति स्नेह एवं श्रद्धा की भावना। वर्ष में एक दिन अपने प्रिय एवं निकट के सम्बन्धियों को स्मरण करना, मत की स्मृति में सम्बन्धियों, मित्रों एवं विद्वान् लोगों को भोजन के लिए आमन्त्रित करना, विद्वान् किन्तु धनहीन, सच्चरित्र तथा सादे जीवन एवं उच्च विचार वाले व्यक्तियों को दान देना एक अति सुन्दर आचरण है। ऐसा करना अतीत की परम्पराओं के अनुकूल होगा और उन आचरणों एवं व्यवहारों को, जो आज निर्जीव एवं निरर्थक से लगते हैं, पुनर्जीवित एवं अनुप्राणित करने के समान होगा। बहुत प्राचीन काल से हमारे विश्वास के तात्त्विक दृष्टिकोणों एव धारणाओं के अन्तर्गत ऋषियों, देवों एवं पितरों से सम्बन्धित तीन ऋणों की एक मोहक धारणा भी रही है। पितृ-ऋण पुत्रोत्पत्ति से चुकता है, क्योंकि पुत्र पितरों को पिण्ड देता है। यह एक अति व्यापक एवं विशाल धारणा है। गया में तिलयुक्त जल के तर्पण एवं पिण्डदान के समय जो कहा जाता है उससे बढ़कर कौन-सी अन्य उच्चतर भावना होगी? कहा गया है— ‘मेरे वे पितर लोग, जो प्रेतरूप में हैं, तिलयुक्त यव (जौ) के पिण्डों से तृप्त हों, और प्रत्येक वस्तु, जो ब्रह्मा से लेकर तिनके तक चर हो या अचर, हमारे द्वारा दिये गये जल से तृप्त हो।’ यदि हम इस महान् उक्ति के तात्पर्य को अपने वास्तविक आचरण में उतारें तो यह सारा विश्व एक कुटुम्ब हो जाय। अतः युगों से संचित जटिल बातों को त्यागते जाते हुए आज के हिन्दुओं को चाहिए कि वे धार्मिक कृत्यों एवं उन उत्सवों के, जिन्हें लोग भ्रामक ढंग से समझते आ रहे हैं, भीतर पड़े हुए सोने को न ठुकरायें। आज भी बहुत-से विद्वान् महानुभाव लोग

अपनी माता एवं पिता के प्रति श्रद्धा-भावना को अभिव्यक्त करते हुए श्राद्ध-कर्म करते हैं।"[15]

(4) श्राद्ध में व्यय अपनी सामर्थ्य के अनुसार किया जाना चाहिए

इस पुस्तक के लेखन एवं श्राद्ध सम्पन्न कराने की इस विधि को बताने का एक और उद्देश्य है। प्रचलित श्राद्ध में व्यय के भार से ऐसे कितने गरीब परिवार हैं, जिनपर कर्ज का ऐसा बोझ आ पड़ता है कि उससे वे निकल नहीं पाते; या तो उनकी थोड़ी बची हुई जमीन बिक जाती है या बेटी की शादी रुक जाती है या बेटे की पढ़ाई के खर्च में कटौती करनी पड़ती है।

भले ही माता-पिता के जीवन-काल में उसने एक रुपया उनके इलाज पर या उनकी इच्छापूर्ति के लिए नहीं खर्च किया होगा, किन्तु उनके मरने पर श्राद्ध की सामाजिक प्रतिष्ठा में उसे बिकना पड़ता है। किन्तु ऐसी स्थिति इसलिए आयी कि हमारे समाज के पुरोधाओं ने हमारे शास्त्रों में निर्धारित विधानों को सही रूप से हमें नहीं बतलाया। विष्णुपुराण (3.14.21-31), वराहपुराण (13.51-61) एवं अन्य धर्मशास्त्रों में श्राद्ध पर होने वाले व्यय का विधान है। यहाँ पर अत्यन्त प्रतिष्ठित विष्णुपुराण से उन दस श्लोकों को उदधृत किया जाता है जिनमें यह उल्लेख है कि श्राद्ध में व्यय कैसे किया जाना चाहिए।

पितृगीतांस्तथैवात्र श्लोकास्तांश्च शृणुष्व मे।
श्रुत्वा तथैव भवता भाव्यं तत्रदृतात्मना॥21॥

पितरों के द्वारा कही गयी पितृगीता के श्लोकों को मुझसे सुनें और सुनकर आदरपूर्वक इसी प्रकार का आचरण करें॥21॥

अपि धन्यः कुले जायेदस्माकं मतिमान्नरः।
अकुर्वत् वित्तशाठ्यो यः पिण्डान्नो निर्वपिष्यति॥22॥

क्या हमलोंगों के कुल में ऐसा विचारवाला धान्य व्यक्ति उत्पन्न होगा जो धन का घमण्ड न करता हुआ हमें पिण्ड देगा?॥22॥

रत्नं वस्त्रं महायानं सर्वभोगादिकं वसु।
विभवे सति विप्रेभ्यो योऽस्मानुद्दिश्य दास्यति॥23॥

सामर्थ्य होने पर हमें लक्ष्य कर ब्राह्मणों को रत्न, वस्त्र, विशाल वाहन, सभी प्रकार की भोग्य सामग्रियों का दान करेगा?॥23॥

अन्नेन वा यथाशक्त्या कालेऽस्मिन् भक्तिनम्रधीः।
भोजयिष्यति विप्राग्राँस्तन्मात्रविभवो नरः॥24॥

अथवा इस समय (श्राद्ध के समय) भक्ति से नम्र बुद्धि वाला अपने सामर्थ्य के अनुसार उतना ही विभव वाला व्यक्ति अन्न से ब्राह्मणश्रेष्ठों को भोजन करायेगा॥24॥

असमर्थोन्नदानस्य धान्यमात्रं स्वशक्तितः।
प्रदास्यति द्विजाग्रेभ्यः स्वल्पाल्पां वापि दक्षिणाम्॥25॥

अन्नदान करने में भी यदि वह समर्थ नहीं है तो अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणश्रेष्ठों को केवल धान दान करेगा, साथ ही, थोड़ी ही सही दक्षिणा भी देगा॥25॥

तत्राप्यसामर्थ्ययुतः कराग्राग्रस्थितांस्तिलान्।
प्रणम्य द्विजमुख्याय कस्मैचिद् भूप! दास्यति॥26॥

हे राजन्, यदि इतना भी सामर्थ्य न हो तो उंगलि के अगले भाग से तिल (एक चुटकी भर तिल) उठाकर किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को देगा॥26॥

तिलैः सप्ताष्टभिर्वापि समवेतं जलाञ्जलिम्।
भक्तिनम्रः समुद्दिश्य भुव्यस्माकं प्रदास्यति॥27॥

अथवा सात या आठ तिल से युक्त जल अंजलि में लेकर भक्ति से नम्र होकर हमें लक्ष्य कर धरती पर देगा॥27॥

15 काणे, पी.बी. धर्मशास्त्र का इतिहास, तृतीय भाग, हिन्दी अनुवाद, अर्जुन चौबे काश्यप, (अनु.), (1975ई.) द्वितीय संस्करण, पृ. 1297-98)

यतः कुतश्चित् सम्प्राप्य गोभ्यो वापि गवास्त्रिकम्।
अभावे प्रीणयन्नस्माञ्छ्रद्धायुक्तः प्रदास्यति ॥28॥

अथवा इसके अभाव में भी जहाँ कहीं से भी गाय के एक दिन का भोजन संग्रह कर हमें प्रसन्न करते हुए श्रद्धा के साथ गाय को अर्पित करेगा ॥28॥

सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षमूलप्रदर्शकः।
सूर्यादि-लोकपालानामिदमुच्चैर्वदिष्यति ॥29॥

न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्य-
च्छ्राद्धोपयोग्यं स्वपितृन्नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ
कृतौ भुजौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥30॥

कुछ भी नहीं रहने पर वन जाकर अपनी काँख दिखाते हुए अर्थात् दोनों हाथ ऊपर उठाकर सूर्य आदि लोकपालों के प्रति जोर से यह कहेगा— मेरे पास न तो सम्पत्ति है, न अन्न है, न ही श्राद्ध के लिए उपयोगी अन्य वस्तुएँ हैं। मैं अपने पितरों के प्रति नतमस्तक हूँ। मेरी इस भक्ति से मेरे पितर तृप्त हों, मैंने वायु के रास्ते अपने दोनो हाथ ऊपर उठा लिए हैं ॥29-30॥

इत्येतत् पितृभिर्गीतं भावाभावप्रयोजनम्।
यः करोति कृतं तेन श्राद्धं भवति पार्थिव ॥31॥

हे राजन्, इस प्रकार, सामर्थ्य एवं अभाव दोनों बातें कहनेवाली पितरों की इस वाणी के अनुसार जो कर्म करते हैं उनके द्वारा श्राद्ध सम्पन्न माना जाता है ॥31॥

यही अंश वाराहपुराण में भी 13-51 से 13-61 तक अविकल उद्धृत है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि जो आर्थिक रूप से समर्थ हैं, वे दान-दक्षिणा में जो दें, उसकी कोई सीमा नहीं है। किन्तु जो सम्पन्न नहीं हैं, गरीब हैं, उनके लिए यह विधान है कि एक मुट्ठी तिल देने से या कुछ तिलों के साथ जलांजलि देने से भी काम चल जायेगा। इसमें यह विधान भी है कि एक गाय को एक दिन चारा खिलायेगा, उससे भी पितर प्रसन्न रहेंगे। कुछ भी नहीं है तो वन जाकर अपने हाथ उठाकर 20वें श्लोक में जो भाव है उसको प्रस्तुत कर श्राद्ध सम्पन्न कर लेगा।

अतः अनुरोध है कि व्यय के बोझ से अपने एवं अपने परिवार को बचाते हुए इस पुस्तक[16] में वर्णित शास्त्रीय, वैदिक रीति से श्राद्ध सम्पन्न करायें। यह श्राद्ध -पद्धति विकल्प के रूप में प्रस्तुत की जा रही है। यदि तर्कसंगत और शास्त्र-सम्मत लगे, तो इसके अनुसार श्राद्ध-विधान करायें।

(5) श्राद्ध कितने दिनों का होना चाहिए

परम्परा के अनुसार श्राद्ध 12 या 13 दिनों का होता है। प्रतिदिन महापात्र ब्राह्मण दिन में एक बार आकर पिण्डदान कराते हैं और दसवें दिन क्षौर कर्म कर शौच धारण करते हैं। ग्यारहवें दिन महापात्र ब्राह्मण द्वारा श्राद्ध कर्म निष्पन्न कराया जाता है और बारहवें दिन मुख्य श्राद्ध होता है। कहीं-कहीं इसका कुछ विधान तेरहवें दिन भी चलता है। जो लोग गरुड़-पुराण की पद्धति से इतनी लम्बी अवधि तक श्राद्ध सम्पन्न करते हैं और शय्यादान से लेकर गोदान तक उदारता दिखाते हैं, उनकी आस्था एवं विश्वास पर हम आघात नहीं करना चाहते; किन्तु आज अधिकतर लोगों के पास या तो समयाभाव है या गाय की पूँछ पकड़ कर कल्पित वैतरणी पार करने में अनास्था। अतः ये आर्य-समाजी पद्धति से तीन दिनों में श्राद्ध कर लेते हैं और तीसरे दिन कुछ वैदिक मन्त्रों का पाठ कराके और कुछ हवन कर श्राद्ध की इतिश्री कर लेते हैं। इससे श्राद्ध की खानापुरी तो हो जाती है; किन्तु शास्त्रीय विधान का भाव परिलक्षित नहीं होता है। पढ़े-लिखे लोग, शहर में रहने वाले या बाहर नौकरी या

16 आचार्य किशोर कुणाल द्वारा लिखित तथा महावीर मन्दिर द्वारा शीघ्र प्रकाश्य— 'वैदिक श्राद्धपद्धति' यहाँ अभिप्रेत है।

“ये आर्य-समाजी पद्धति से तीन दिनों में श्राद्ध कर लेते हैं और तीसरे दिन कुछ वैदिक मन्त्रों का पाठ कराके और कुछ हवन कर श्राद्ध की इतिश्री कर लेते हैं। इससे श्राद्ध की खानापुरी तो हो जाती है; किन्तु शास्त्रीय विधान का भाव परिलक्षित नहीं होता है। पढ़े-लिखे लोग, शहर में रहने वाले या बाहर नौकरी या व्यवसाय करने वाले वर्ग का बड़ा हिस्सा इस आर्यसमाजी खानापुरी का अनुसरण करता दीख रहा है; अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि ...”

व्यवसाय करने वाले वर्ग का बड़ा हिस्सा इस आर्यसमाजी खानापुरी का अनुसरण करता दीख रहा है; अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि धर्मशास्त्रों की समीक्षा कर एक तर्कसंगत और शास्त्र-सम्मत विधान का अनुसरण किया जाये।

पारस्कर गृह्यसूत्र एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा का गृह्यसूत्र होने के कारण कर्मकाण्डीय ग्रन्थों में सर्वोपरि स्थान रखता है। गार्हस्थ्य-जीवन से सम्बद्ध प्रायः जितने भी कर्म हैं, उन सबका समावेश गृह्यसूत्रों में है। सूत्र-शैली में लिखित होने के कारण ये अल्पकाय होने पर भी गुणवत्ता में विपुल एवं महनीय है। पारस्कर मुनि का कात्यायन के शिष्य या भगिना माने जाते हैं।

पारस्कर-गृह्यसूत्र के तृतीय काण्ड की दशम कण्डिका में अशौच एवं श्राद्ध का विधान है। मरण (शव)— जनित अशौच का विवेचन करते हुए यहाँ यह निर्देश है कि यह अशौच तीन रातों तक रहता है। कुछ इसे दस रातों तक मानते हैं।

त्रिरात्रं शावमाशौचम् (-3.10.29)

दशरात्रमित्येके (-3.10.30)

यानी सामान्य सिद्धान्त है कि मरण से उत्पन्न अशौच तीन रात्रियों तक व्याप्त रहता है और चौथे दिन श्राद्ध का समापन किया जा सकता है। किन्तु कुछ लोग इस अशौच को दस रात्रि-पर्यन्त मानते हैं। यह विडम्बना है कि तीन रात्रि-पर्यन्त अशौच और चौथे दिन श्राद्ध सम्पन्न करने के सिद्धान्त को लोगों ने तिलांजलि दे दी और दस दिवसीय मर्यादा को ही सर्वमान्य कर दिया।

पारस्कर गृह्यसूत्र के प्रसिद्ध भाष्यकार हरिहर ने भी तीन रात्रि वाले अशौच का समर्थन करते हुए इसका विधान इस प्रकार बतलाया है—

यानी तीन रात का श्राद्ध होने पर प्रथम दिन तीन पिण्ड, छह अंजलि और छह पात्र देना चाहिए। द्वितीय दिन चार पिण्ड, 22 अंजलि और 22 पात्र देना चाहिए। तीसरे दिन पुनः तीन पिण्ड, 27 अंजलि और 27 पात्र देने की बात भाष्यकार हरिहर ने की है। उन्होंने एक अच्छा श्लोक भी उद्धृत किया है जिसका भावार्थ यह है कि पहले दिन तीन पिण्ड मिलाकर देना चाहिए, दूसरे दिन चार पिण्ड देना चाहिए और अस्थि संचयन करना चाहिए तथा तीसरे दिन तीन पिण्ड देने और वस्त्रादि धोने की बात कही गयी है।

विकल्प में, प्रथम दिन एक पिण्ड, एक पात्र, एक अंजलि, द्वितीय दिन चार पिण्ड, 14 अंजली, 14 पात्र और तृतीय दिन पाँच पिण्ड, 40 अंजलि और 40 पात्र का विधान किया गया है—

“त्र्यहाशौचपक्षे तु प्रथमदिने त्रीन् पिण्डान् षडञ्जलीन् षट् पात्राणि च दद्यात्। द्वितीयदिने चतुरः पिण्डान् द्वाविंशत्यञ्जलीन् द्वाविंशतिपात्राणि तृतीयदिने पुनस्त्रीन् पिण्डान् सप्तविंशत्यञ्जलीन् सप्तविंशतिपात्राणि च दद्यात्। यतः स्मरन्ति—

प्रथमे दिवसे देयास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः।
द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसञ्चयनं तथा॥

त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेऽह्नि वस्त्रादिक्षालयेत्तत इति। केचित्तु प्रथमेऽह्नि एकं पिण्डमेकमञ्जलिमेकं पात्रं द्वितीयदिने चतुरः पिण्डान् चतुर्दशाञ्जलीन् चतुर्दशपात्राणि तृतीयदिने पञ्चपिण्डान् चत्वारिंशदञ्जलीन् चत्वारिंशत्पात्राणीति मन्यन्ते। एतत्प्रेतकृत्यकरणानन्तरं न पुनः स्नायात् स्मरणाभावात्।"[17]

प्रस्तुत पुस्तक में पारस्कर-गृह्यसूत्र के वचनानुसार चार दिन का श्राद्ध-विधान प्रस्तुत किया जा रहा है। मनुस्मृति 4.217 पर मेधातिथि ने 'प्रेतान्नम्' की व्याख्या में लिखा है—

"कारुण्याच्चतुर्थीश्राद्धादिप्रवृत्तस्य यदन्नं तन्न भोज्यम्। "दशाहिकं नावमिकं चतुर्थीश्राद्ध-मष्टमी" इत्यादिरामायणवर्णितमन्यैरपि गृह्यकारैः।"[18]

इसी प्रकार कर्मकाण्ड के सबसे विशाल ग्रन्थ 'चतुवर्गचिन्तामणि' के 'श्राद्धकल्प' में हेमाद्रि ने भी लिखा है कि दसवें, नौंवे या चौथे दिन के श्राद्ध का वर्णन रामायण और गृह्यकारों ने भी किया है।

"दशाहिकं नावमिकं चतुर्थी श्राद्धं" इत्यादिना रामायणे वर्णितम्। वर्णितमन्यैरपि गृह्यकारः।"[19]

इस प्रकार चौथे दिन के श्राद्ध का विधान प्राचीन काल से प्रचलित रहा है।

17वीं सदी के ओड़िया धर्मशास्त्रकार आचार्य दिव्यसिंह महापात्र की पुस्तक 'श्राद्धदीप' में भी चार दिवसीय श्राद्ध का उल्लेख मिलता है।

चतुर्थे सप्तमे चैव नवमे दशमे तथा।
यदत्र दीयते जन्तोस्तन्नवश्राद्धमिष्यते॥[20]

ग्रन्थकार दिव्यसिंह ने पृ. 6 पर इस उद्धृत श्लोक को वैशम्पायन का बतलाया है।

यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु सोमवार को दोपहर दो बजे होती है और उसका अग्नि-संस्कार उसी दिन कर दिया जाता है, तो वह सोम, मंगल और बुधवार की रात्रि तक अशौच में रहेगा और बृहस्पतिवार को श्राद्ध सम्पन्न करने का अधिकारी होगा। यह गणना कब से प्रारम्भ होगी, इस विषय पर तीन मत हैं। मध्यरात्रि से पहले मृत्यु होने पर पूर्व दिन में उसकी गणना होगी; मध्य रात्रि के बाद दूसरे दिन की गणना होगी। दूसरे मत के अनुसार दो बजे के पहले मृत्यु होने पर पूर्व दिन में तथा उसके बाद मृत्यु होने पर बाद वाले दिन में गणना होती है और तीसरे मत के अनुसार सूर्योदय के पूर्व मृत्यु होने पर गणना पूर्व दिन में होगी।

कमलाकर भट्ट कृत निर्णयसिन्धु की टीका में कश्यप को उद्धृत करते हुए लिखा है—

रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके।
पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः।[21]

यानी सूर्योदय के पूर्व मृत्यु की स्थिति में पूर्व दिन की गणना होनी चाहिए।

एक ऐसी परिस्थिति भी हो सकती है कि व्यक्ति की मृत्यु हृदयगति रुकने या अन्य कारण से रात में ही सोते समय हो गयी हो; किन्तु दूसरों को इसकी जानकारी दूसरे दिन सूर्योदय के बाद हुई हो। किन्तु इससे अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि इस पुस्तक में श्राद्ध सम्पन्न होने की गणना अग्नि-संस्कार के दिन से ही गयी है। यदि किसी व्यक्ति का निधन सोमवार को होता है

17 पारस्करगृह्यसूत्रम्, पृ. 443.

18 मनुस्मृति, मेधातिथिव्याख्यासहित, 4.217— मृष्यन्ति ये चोपपतिं इत्यादि की व्याख्या, दबे, जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण (सम्पादक), भाग 1 (1-2 अध्याय), भारतीय विद्याभवन, 1972ई. पृ. 464.

19 हेमाद्रि, चतुर्वर्गचिन्तामणि, अध्याय 10, पूर्वोक्त, पृ. 775.

20 आचार्य दिव्यसिंह महापात्र (17वीं शती), अथानुगमनविचारः— श्लोक 6, यादवेन्द्र राय न्यायतर्कतीर्थ, एसियाटिक सोसायटी, 1977ई.,

और अग्नि-संस्कृत मंगलवार को होता है, तो श्राद्ध सम्पन्न होने का दिन मंगल, बुध एवं बृहस्पति की रात बिताकर शुक्रवार होगा। अग्नि-संस्कार की तिथि से गणना न करने पर ऐसी भी स्थिति आ सकती है कि किसी महानुभाव के अग्नि-संस्कार में दो-तीन दिनों का विलम्ब होने पर श्राद्ध ही सम्यक् रूप से न हो सके। दशरथजी के निधन के बाद केकय देश से भरत को आने में आठ दिन लगे। सात रातों यात्रा के बाद वे अयोध्या पहुँचे थे—

तां पुरीं पुरुषव्याघ्रः सप्तरात्रोषितः पथि।[22]

वसिष्ठजी द्वारा भेजे गये दूतों को भी केकय देश पहुँचने में एक सप्ताह का समय लगा होगा; क्योंकि जब राजकुमार भरत रथ में आठवें दिन अयोध्या पहुँचे, तो दूतों को भी अश्व पर सवार होने के बावजूद 6-7 दिन लगे ही होंगे। रामायण के सामान्य पाठ में दूतों के रात में केकय पहुँचने का उल्लेख है कि कुछ पाठों में 'सप्तरात्रेण ते तत्र गत्वा राजगृहं वरम्' यानी सात रात व्यतीत होने पर राजा के प्रासाद में पहुँचे। बड़ौदा से सम्पादित संस्करण में भी कुछ पाठों में यह उल्लेख मिलता है। इस प्रकार राजा दशरथ की अन्त्येष्टि मृत्यु के दो सप्ताह बाद हुई। अतः श्राद्ध की तिथि मरण-दिन से नहीं, बल्कि अग्नि-संस्कार के दिन से गिननी चाहिए।

(6) 'पितर' शब्द का क्या अर्थ है?

अपने पितरों को प्रेत योनि में भटकाने का कारण भी भ्रान्ति है, अज्ञान है। 'प्रेत' शब्द में 'प्र' उपसर्ग है, 'इ' धातु है और 'क्त' (निष्ठा) प्रत्यय है। 'इ' धातु से 'गमन' का बोध होता है और 'प्रेत' शब्द का सामान्य अर्थ होता है— सदा के लिए गया व्यक्ति यानी मृत व्यक्ति; किन्तु कालान्तर में सभी मृत व्यक्तियों को अतृप्तात्मा प्रेतयोनि में डालकर और उसमें उत्पन्न कष्टों की कल्पना करके उससे छुटकारे के लिए किये जाने वाले संस्कारों को श्राद्ध से जोड़ दिया गया।

'पितर' शब्द 'पितृ' (= पिता) का प्रथमा बहुवचन है। इसका रूप इस प्रकार चलता है— पिता-पितरौ-पितरः। इसके अलावे, माता एवं पिता दोनों का द्वन्द्व समास करने पर एकशेष द्वन्द्व समास में 'पितरौ' शब्द की सिद्धि होती है जिसका अर्थ माता और पिता— दोनों होता है। कालिदास ने 'रघुवंश' के मंगलाचरण श्लोक में लिखा है—

जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।

यानी जगत के माता-पिता (पितरौ) पार्वती और परमेश्वर शिव को मैं नमस्कार करता हूँ। अतः माता-पिता, पितामह-पितामही, प्रपितामह-प्रपितामही ये पूर्वज बहुवचन में पितर कहलाते हैं। संस्कृत में आदर दर्शाने के लिए बहुवचन का प्रयोग एकवचन में भी होता है। अतः पितर और पिता में बहुत अन्तर नहीं है, सिवा इसके कि जो चल बसे हुए पिता या पूर्वज हैं, वे पितर हैं। वे भटकने वाले भूत-प्रेत नहीं है। पिता शब्द का मूल है— 'पितृ', जो पा धातु से निष्पन्न होता है—

पितृ- पाति रक्षत्यपत्यं यः।

जो अपत्य सन्तान की रक्षा करता है, वह पिता कहलाता है। 'पितर' शब्द सामान्यतः तीन पूर्वजों का द्योतक होता है, किन्तु उन्हें प्रेत-योनि या प्रेत-कोटि में रखना उन असंख्य पूर्वजों के साथ घोर अन्याय है, जो अपने सत्यकर्मों से श्रेष्ठ लोकों में विचरण करते हैं या श्रेष्ठ पदों पर विराजमान हैं। यहाँ पितर शब्द दिवंगत पूर्वजों का द्योतक है; प्रेतयोनि में काल्पनिक रूप से भटकते रहने वाले भूखे, प्यासे, व्याकुल प्रेतात्मा मृतकों का नहीं।

21 कृष्णभट्ट, निर्णयसिन्धु की व्याख्या, नेने, गोपालशास्त्री (सम्पादक), चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1925ई. पृ. 1863.
22 वाल्मीकि रामाय़ण, अयोध्याकाण्ड 71.18. गीताप्रेस संस्करण

(7) स्त्रियाँ क्या अग्निसंस्कार कर सकती हैं?

स्त्रियों को भी अग्नि-संस्कार करने का शास्त्रीय अधिकार है। पारस्कर गृह्यसूत्र में स्पष्टतः लिखा हुआ है

प्रत्तानामितरे कुर्वीरन् ॥3.10.42 ॥

ताश्च तेषाम् ॥3.10.43 ॥

इस पर प्रसिद्ध भाष्यकार हरिहर ने यह भाष्य लिखा है—

(हरिहरभाष्यम्) — **'प्रत्ता...षाम्' । प्रत्तानां परिणीतानां स्त्रीणामितरे भर्त्रादयो दाहादिकर्म कुर्युः न पित्रादयः। ताश्च प्रत्ता स्त्रियः तेषां भर्त्रादीनां यथाधिकारमुदकदानादि कर्म कुर्युः ॥**

पारस्कर सूत्र का हिन्दी अनुवाद डा. जगदीशचन्द्र मिश्र[23] ने इस प्रकार किया है—

विवाहित स्त्रियों का दाह-संस्कार उनके पति करें और विवाहित स्त्रियाँ अपने पतियों का दाह-संस्कार करें।

पारस्कर गृह्य-सूत्र में तिलाञ्जलि देने के अधिकारी व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी विवचन किया गया है—

अथ कामोदकान्यृत्विक्श्वसुरसखिसम्बन्धि-मातुल-भागिनेयानाम् ॥ 3.10.46.

प्रत्तानाञ्च । 3.10.47.

अर्थात् यज्ञ कराने वाले पुरोहित, सास-श्वसुर, मित्र, रिश्तेदार, मामा-भगिना को उदक-दान करने का अधिकार है। वे दाहसंस्कार के बाद स्नान कर **"एष तिलतोयाञ्जलिस्ते मया दीयते तवोपतिष्ठताम्"** मन्त्र से तिल और जल दे सकते हैं।

(8) क्या श्राद्ध (अशौच) की स्थिति में नित्य सन्ध्या-वन्दन यानी पूजा-अर्चना करनी चाहिए या नहीं।

आजकल देखने में यह आता है कि परिवार या गोतिया में भी किसी के मरण के अशौच की सम्भावना रहती है, तो व्यक्ति भले ही केश-वपन (मुण्डन) न कराये, किन्तु श्राद्धकाल में पूजा-पाठ, भगवान् का स्मरण-अर्चन छोड़ देता है। यह प्रश्न विधान-वेत्ता पारस्कर के समक्ष भी प्रस्तुत हुआ था; अतः उन्होंने अपने गृह्य-सूत्र में इसका उत्तर दिया है—

नित्यानि निवर्तेरन्वैतानवर्जम् ॥3.10.32 ॥

इसपर हरिहर ने समझाने की दृष्टि से यह भाष्य लिखा है—

"नित्यान्यावश्यकानि सन्ध्यावन्दनादीनि निवर्तेरन् अनधिकारान्न प्रवर्तन्ते। कथम्? वैतानवर्जं वितानो गार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्निनां विस्तारस्तत्र साध्यमग्निहोत्रादि कर्म तद्वैतानं तद्वर्जयित्वाऽन्य-न्निवर्तते इत्यर्थः।" [24]

यानी अग्निहोत्र कर्म को छोड़कर सभी नित्यकर्म यानी सन्ध्या-वन्दन इस श्राद्ध की स्थिति में भी करना चाहिए।

किन्तु कतिपय निबन्धकारों एवं धर्म-नियामकों ने भक्तों को भगवान् की पूजा-अर्चना से ही वंचित कर दिया।

***

23 पारस्कर गृह्यसूत्र, डा. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी (सम्पादक), चौखम्भा सुरभारती वाराणसी, पुनर्मुद्रित, 2010. पृ. 436

24 पारस्कर गृह्यसूत्र, उपरिवत् पृ. 434

पितर की वैदिक अवधारणा एवं उसका विकास

श्री राधा किशोर झा
भारतीय प्रशासनिक सेवा (अवकाश-प्राप्त)
सामान्य प्रशासन विभाग, बिहार (पटना) क्वांटम डीएनआर. एपार्टमेंट, फ्लैट सं. 305, 70 फीट बाइपास, विष्णुपुर, पकरी 35 फीट, बिहार डिजिटल वर्ल्ड के पास, द्वारकापुरी, पटना—800002

इस आलेख में लेखक ने सिद्ध किया है कि वर्तमान में प्रचलित श्राद्ध-पद्धति के मूल में वैदिक पितृयज्ञ है, जो मरणोपरान्त किया जाता था। वेद में यह हवन प्रधान था, ब्राह्मण भाग में पिण्डदान भी जुड़ गया तथा धर्मसूत्र में ब्राह्मण भोजन को विकल्प के रूप में प्रमुख माना गया। गृह्यसूत्रों में हवन, पिण्डदान एवं ब्राह्मण-भोजन इन तीनों का समन्वय कर दिया गया। फलस्वरूप अग्नौकरण, पिण्डदान और ब्राह्मण भोजन ये श्राद्ध के तीन अंग हो गये।" वस्तुतः परवर्ती काल में जब आगम परम्परा प्रधान हुई तो हवन के स्थान पर भी ब्राह्मण भोजन आ गया तथा पद्धतियों में दान को भी सम्मिलित कर लिया गया। लेकिन सैद्धान्तिक रूप से ऋग्वेद में संकेतित पितर, पितृलोक, यमलोक तथा पूर्वजों के प्रति श्रद्धा का भाव वर्तमान तक जीवित है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में वर्णित पितृपिण्डयज्ञ वर्तमान में एकोद्दिष्ट के रूप में है, इसीकी 16 आवृत्ति कर षोडश-श्राद्ध का ताना-बाना बुना गया है।

वेद का यह अनुशासन है कि हम देव एवं पितृकार्य में प्रमाद न करें। **देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।**[1] अर्थात् यावज्जीवन देवयज्ञ एवं पितृयज्ञ करना चाहिए

यज्ञ अध्याय में नित्य पितृयज्ञ (तर्पण) का वर्णन किया गया है। यहाँ पर हम मरणोपरान्त पितर के लिए किए जानेवाले पितृयज्ञ का वर्णन करेंगे।

ऋग्वेद के दशम मंडल के 15 वें सूक्त में पितृसूक्त का वर्णन है जिसमें चौदह ऋचाऐं है। इस सूक्त के आठ ऋचाओं या 14 ऋचाओं से हवन करने का विधान अष्टका श्राद्ध में किया गया है—

उदीरतामवर उत्परास (ऋ. वे. 10.15.1) इत्यष्टाभिर्हुत्वा यावतीभिर्वा कामयीत।[2]

इस सूत्र की व्याख्या में व्याख्याकार नारायण लिखते हैं—

अग्नौ करणमन्त्रयोः स्थाने 'उदीतरतामवर उत्परास' इत्यष्टाभिश्चतुर्दशभिर्वा हुत्वा मेक्षण-मनुप्रहृत्य ब्राह्मणेभ्योऽन्नदानादिशेषनिवेदनान्तं पार्वण -वत्कृत्वा, भुक्तवत्सु पिण्डपितृयज्ञवन्नियनादि-पात्रोत्सर्गान्तं कृत्वा, ततः श्राद्धशेषं समापयेदिति।

अर्थात् अग्नि में आहुति देते समय 'उदीरतामवर उत्परास' इन आठ ऋचाओं से अथवा चौदह ऋचाओं से आहुति देना चाहिए। इसके बाद ब्राह्मणों को

1. तैत्तिरीय उपनिषद् : 1.11.1
2. आश्वालायन गृह्यसूत्र : 2.4.6.

अन्नदान आदि देकर निवेदन कर पार्वण के समान क्रिया कर ब्राह्मणों के भोजनापरान्त पिण्डपितृयज्ञ के समान नियम आदि पात्रों का उत्सर्ग कर शेष श्राद्ध समाप्त करें।

तैत्तिरीय संहिता में पितृयज्ञ के हविष् के होम मन्त्र का वर्णन है, जिनकी संख्या 14 है। इसमें उल्लेख है—

उशन्तस्त्वा हवामह उशन्तः समिधीमहि।
उशन्नुशत आ व पितॄन् हविषे अत्तवे।[3]

हे अग्ने! कामना वश हम तुम्हें आवाहन करते हैं और कामनावश तुम्हें वेदी पर प्रदीप्त करते हैं। हे अग्ने! कामना करते हुए तुम हविष् की कामना करनेवाले पितरों को हविः भक्षण करने के लिए यहाँ ले आओ।

यह मन्त्र थोड़ा अन्तर से माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद, 19.70 में है—

उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधी महि।
उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे।[4]

ऋग्वेद के पितृसूक्त (10.15) में सोमवन्त पितर, बर्हिषद् पितर और अग्निष्वात्त पितर को आवाहन किया गया है और उन्हे हवि प्रदान किया गया तथा स्तुति की गई है।

इसी सूक्त के अधोलिखित मन्त्र में कहा गया है— जो पितर यहाँ यज्ञ में उपस्थित है, जो उपस्थित नहीं है, जिन्हे हम जानते है, और जिन्हें हम ठीक से नहीं जानते — हे जात वेदस अग्ने। वे जितने हैं, उन्हें तुम अच्छी तरह जानते हो। उन्हें तुम इस यज्ञ से संतुष्ट करो।

ये चेह पितरो ये च नेह
याश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः
स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व॥[5]

इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में ऋषियों द्वारा अपने पितरों की यज्ञ में आहूत किया जाता था, उनकी स्तुति की जाती थी, उनसे आशीर्वचनो की याचना की जाती थी, साथ ही उन पितरों के उन्नयन के लिए प्रार्थना की जाती थी। अर्थात् ऋषियों को अपने पितरों के प्रति काफी श्रद्धा थी। शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन शाखा के 19वें अध्याय से स्पष्ट होता है कि सौत्रमणि यज्ञ में पितर का आवाहन, हवन एवं स्तुति होती थी। कात्यायन श्रौत्रसूत्र[6] से ज्ञात होता है कि पिण्डपितृयज्ञ दर्शपौर्ण मास यज्ञ का एक अंग था।

वेद के ब्राह्मण भाग में पिण्डपितृयज्ञ और पितृयज्ञ का वर्णन मिलता है, इसमें पिता, पितामह और प्रपितामह के लिए पिण्डदान किया जाता था। साथ ही, पिण्डपितृयज्ञ में अग्नि एवं सोमदेवता के लिए हवन किया जाता था तदनन्तर सभी ऋतुओं को पितर के रूप में नमस्कार किया जाता था।[7] शतपथ ब्राह्मण 2.6.1 में पितृयज्ञ का वर्णन है, जिसमें सोमवन्त, बर्हिषद् एवं अग्निष्वात्ता पितर के लिए अग्नि में हवन का विधान है और पिता, पितामह और प्रपितामह के लिए पिण्डदान का विधान किया गया है तदनन्तर ऋतुओं को पितर मानकर प्रणाम किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया कि पितृयज्ञ करने से पितरों का श्रेय लोक प्राप्त होत है और कुछ हानि या मृत्यु अपने अनुचित आचार से होता है, उसका प्रतिकार हो जाता है।[8] तैत्तिरीय ब्राह्मण[9] में पितृयज्ञ का

3. तैत्तिरीय संहिता 2-6-12.1
4. माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद : 19.70
5. शुक्ल माध्यन्दिन यजुर्वेद : 18.67; ऋग्वेद 10.15.13
6. कात्यायन श्रौत्रसूत्र : 4.7.30-31
7. द्रष्टव्य शतपथ ब्राह्मण : 2.4.2
8. द्रष्टव्य- शतपथ ब्राह्मण : 2.6.1.3
9. तैत्तिरीय ब्राह्मण 1.3.10

वर्णन है। तैत्तिरीय संहिता[10] में महापितृयज्ञ का वर्णन है। छान्दोग्य ब्राह्मण (2.3.1.2) में भी यह वर्णन मिलता है।

कात्यायन श्रौतसूत्र[11] में उल्लेख है कि प्रत्येक मास के कृष्ण पक्ष में अमावस्या तिथि को पिण्डपितृयज्ञ करना चाहिए।

गोभिल गृह्यसूत्र के सूत्र 4.4.1 की व्याख्या में व्याख्याकार पं. सत्यव्रत सामाश्रमी ने लिखा है— **'पिण्डपितृयज्ञ' पिण्डं शरीरं भस्मीभूतं तदुपलक्ष्य यत् पितृपुरुषस्यार्चनम् तदेव कर्म पिण्डपितृयज्ञ इत्युच्यते।'** पिण्ड का अर्थ है भस्मीभूत शरीर। भस्मीभूत शरीर वाले पितर के उद्देश्य से जो अर्चन दिया जाता है वह पिण्डपितृयज्ञ कहलाता है। इसी में सूत्र 4.4.2 की व्याख्या में लिखा गया है— **तत् पिण्डपितृयज्ञं कर्म श्राद्धम्—इत्याचक्षते।**

यह पिण्डपितृयज्ञ कर्मश्राद्ध कहलाता है। इस व्याख्या से स्पष्ट होता है कि पिण्डपितृयज्ञ ही श्राद्ध है। इसकी पुष्टि महाभारत के अनुशासन पर्व के अधोलिखित श्लोक से भी होती है—

शृणुस्वावहितो राजन् श्राद्धकर्मविधिं शुभम्।
धन्यं यशस्यं पुत्रीयं पितृयज्ञं परं तपः॥[12]

हे नरेश! तुम श्राद्ध कर्म के शुभ विधि को सावधान होकर सुनो। यह धन, यश और पुत्र प्राप्ति करानेवाले पितृयज्ञ है।

दूसरी बात पुष्टि की यह है कि आज भी श्राद्ध में प्रयुक्त होनेवाले मन्त्र एवं विधियाँ शतपथ ब्राह्मण के पिण्डपितृयज्ञ 2.4.1 में वर्णित मन्त्र एवं विधियाँ समान है। अतः यह सिद्ध हुआ कि शतपथ ब्राह्मण में वर्णित पिण्डपितृयज्ञ श्राद्ध ही है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि श्राद्ध में पितर देवता होते हैं और निमंत्रित ब्राह्मण आहवनीय अग्नि।

तत्र पितरो देवता ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थे।[13]

इसी गृह्यसूत्र में श्राद्ध हेतु निमंत्रित ब्राह्मण के लक्षण भी बतलाये गए हैं जो ध्यातव्य है—

प्रयतः प्रसन्नमनास्सृष्टो भोजयेद् ब्राह्मणान्ब्रह्मविदो योनिगोत्रमन्त्रान्तेवास्य सम्बन्धान्।[14]

पवित्र होकर, प्रसन्न मन से उत्साहपूर्वक वेदज्ञ ब्राह्मण को जो विवाह सम्बन्ध, रक्त सम्बन्ध, यजमान-पुरोहित सम्बन्ध या गुरु शिष्य सम्बन्ध से सम्बन्धित न हो, भोजन करावें।

शांख्यायन गृह्यसूत्र में वेदज्ञ (ब्रह्मविद्) ब्राह्मण का लक्षण बतलाया गया जो इस प्रकार है—

अधिदैवमथाध्यात्मिकमधियज्ञमिति त्रयम्।
मन्त्रेषु ब्राह्मणे चैव श्रुतमित्यभिधीयते।[15]

मन्त्रों तथा ब्राह्मणों में देव सम्बन्धी, आत्म सम्बन्धी तथा यज्ञ सम्बन्धी त्रिविध ज्ञान श्रुत (ब्रह्मविद्) कहा जाता है।

क्रियावन्तमधीयानं श्रुतवृद्धं तपस्विनम्।
भोजयेत्तं सकृद्यस्तु न तं भूयः क्षुदश्नुते।[16]

क्रियावान्, शास्त्राध्ययन में संलग्न, शास्त्रज्ञान में वृद्ध और तपस्वी-इनको जो एक बार भी भोजन कराता है, उसे फिर भूख पीड़ित नहीं करते।

ये निमन्त्रित ब्राह्मण के लक्षण मनुस्मृति में भी वर्णित है—

यज्ञेन भोजयेच्छ्राद्धे वह्वृचं वेदपारगम्।
शाखान्तमथाध्वर्युं छन्दोगं तु समाप्तिकम्।[17]

10. तैत्तिरीय संहिता 1.8.5.1
11. कात्यायन श्रौतसूत्र : 4.1.1
12. महाभारत : अनुशासन : 87.3
13. आश्वलायन धर्मसूत्र : 2.7.2.
14. आश्वलायन धर्मसूत्र : 2.7.4.
15. शांख्यायन गृह्यसूत्र : 1.2.5.
16. शांख्यायन गृह्यसूत्र : 1.2.6.
17. मनुस्मृति : 3.145

श्राद्ध में ऐसे ब्राह्मण को यत्नपूर्वक भोजन करावे जो बहुत ऋचाएँ जानते हों, वेद में पारंगत हो वा वेद की शाखाओं का ज्ञाता ऋत्विक् हो, वा जिसने वेद को समाप्ति तक पढ़ा हो।

एषामन्यतमो यस्य युञ्जीत श्राद्धमर्जितः।
पितॄणां तस्य तृप्तिः स्याच्छाश्वती साप्तपौरुषी।[18]

इनमें से जिसके यहाँ कोई एक पूजित ब्राह्मण श्राद्ध वस्तु को खाता है, उसके पितृजनों की तृप्ति सात पीढ़ी तक बराबर होती है।

वेद में हवन प्रधान था, ब्राह्मण भाग में पिण्डदान तथा धर्मसूत्र में ब्राह्मण भोजन। गृह्यसूत्रों में तीनों का समन्वय कर दिया गया। फलस्वरूप अग्नौकरण, पिण्डदान और ब्राह्मण भोजन ये श्राद्ध के तीन अंग हो गये।

आपस्तम्ब गृह्मसूत्र में पिता, पितामह एवं प्रपितामह के लिए अग्नि में अन्न तथा आज्य के हवन का उल्लेख है—

अन्नस्योत्तरा जुहोति।[19] **आज्याहुतिरुत्तरा।**[20]

पिता, पितामह और प्रपितामह के लिए पहले अन्न तदुपरान्त आज्य से हवन करें। कुछ ऋषि का मत है कि पहले आज्य तदुपरान्त अन्न से हवन करें। कुछ ऋषि का विचार था कि माता, मातामह और प्रमातामह के नाम से भी हवन होना चाहिए। इसी गृह्यसूत्र के सूत्र 8.21.8-9 में अन्न/आज्याहुति के पश्चात् ब्राह्मण भोजन, तदुपरान्त पिण्डदान का उल्लेख है। अन्य गृह्यसूत्रों में पिण्डदान के पश्चात् ब्राह्मण भोजन का विधान पाया जाता है। मनुस्मृति में भी अग्नौकरण (3-211), पिण्डदान (3-215, 216) तथा ब्राह्मण भोजन (3.231) का क्रमबद्ध विधान पाया जाता है। इससे स्पष्ट

"वेद में हवन प्रधान था, ब्राह्मण भाग में पिण्डदान तथा धर्मसूत्र में ब्राह्मण भोजन। गृह्यसूत्रों में तीनों का समन्वय कर दिया गया। फलस्वरूप अग्नौकरण, पिण्डदान और ब्राह्मण भोजन ये श्राद्ध के तीन अंग हो गये।"

होता है। श्राद्ध में अग्नौकरण, पिण्डदान एवं ब्राह्मण भोजन तीनों आवश्यक है। इस मत के हरदत्त, हेमाद्रि, कपर्दी आदि धर्मशास्त्र के व्याख्याकर सहमत है।[21]

आज भी श्राद्ध में पिण्डदान और ब्राह्मणभोजन प्रशस्त है, अग्नौकरण गौण हो गया है।

विहित लक्षणवान् ब्राह्मण के अभाव एवं धनाभाव में विकल्प की व्यवस्था हमारे शास्त्रकारों ने दी है—

(क) वशिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार अग्नि में हवन करना चाहिए वा ब्रह्मचारी को भोजन कराना चाहिए।

देवतायतने कृत्वा ततः श्राद्धं प्रवर्तयेत्।
प्रास्येदग्नौ तदन्नं वा दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे॥[22]

देवमन्दिर में श्राद्ध कार्य करना चाहिए।अग्नि में हवन करना चाहिए वा ब्रह्मचारी को भोजन कराना चाहिए।

मनुस्मृति में उल्लेख है कि जो अग्नि है, वही द्विज है, अर्थात् लक्षणवान् द्विज के अभाव में अग्नि वा अग्नि के अभाव में लक्षणवान् द्विज का आश्रय लेना चाहिए।

18. तदेव : 3.146
19. आश्वलायन गृह्यसूत्र : 8.21.3
20. तदेव : 8.21.4
21. द्रष्टव्य- संस्काररत्नमाला- पृ. 1003; काणे : पी.बी. : धर्मशास्त्र का इतिहास : भाग 3 पृ. 1268 में उद्धृत.
22. वशिष्ठ धर्मसूत्र : 11.31

योऽह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते।[23]

अतः लक्षणवान् द्विज के अभाव में अग्नि में पितर के निमित्त हवन करना चाहिए।

(ख) बृहन्नारदीय पुराण में कहा गया है—

द्रव्याभावे द्विजाभावे ह्यन्नमात्रं च पाचयेत्।
पैतृकेन तु सूक्तेन होमं कुर्याद्विचक्षणः।[24]

द्रव्य के अभाव में अथवा ब्राह्मण के न मिलने पर स्वयं केवल अन्न पकावे और वह विचक्षण व्यक्ति पैतृक सूक्त (ऋग्वेद : 10.15) से हवन करें।

(ग) अत्यन्तहव्यशून्यश्चेत् स्वशक्त्या तु तृणं गवाम्।
स्नात्वा च विधिवद् विप्र कुर्याद्वा तिलतर्पणम्।[25]

यदि किसी प्रकार हवन करने में असमर्थ हो, तो अपनी शक्ति के अनुसार गायों को घास खिला दे अथवा विप्र स्नान करके विधिपूर्वक तिल के तर्पण कर दे।

(घ) अथवा रोदनं कुर्यादत्युच्चैर्विजने वने।
दरिद्रोऽहं महापापी वदन्निति विचक्षणः।[26]

अथवा किसी निर्जन वन में जाकर वह बुद्धिमान व्यक्ति 'मैं महापापी हूँ, दरिद्र हूँ' यह कहता हुआ उच्च स्वर से रोये।

वर्त्तमान परिस्थिति में यथाविहित लक्षण वाला ब्राह्मण मिलना दुर्लभ है, अतः अग्नि में पितृसूक्त से हवन तथा गोग्रास ही सुलभ प्रतीत होता है।

आश्वालायन गृह्यसूत्र[27] में चार प्रकार के श्राद्ध का उल्लेख है— पार्वणश्राद्ध, एकोद्दिष्ट श्राद्ध, आभ्युदयिक श्राद्ध और काम्यश्राद्ध। इन श्राद्धों के बारे में संक्षेप में वर्णन किया जाता है।

पार्वण श्राद्ध

'पार्वण श्राद्ध' दो शब्दों 'पार्वण' तथा श्राद्ध के योग से बना है। पार्वण का अर्थ है—**पर्वणि भवं पार्वणम्** अर्थात् पर्व में होनेवाला आश्वालायन गृह्य परिशिष्ट के अनुसार पर्व का अर्थ है—अमावस्या[28] चूँकि यह श्राद्ध अमावस्या को किया जाता है अतः यह पार्वण श्राद्ध कहलाता है। इसके विधि का वर्णन आश्वलायन गृह्य सूत्र 4.7.2 एवं 4.7. 5-7 में किया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति के विज्ञानेश्वर भाष्य में पिता, पितामह और प्रपितामह के उद्देश्य से किए जानेवाले श्राद्ध को पार्वण श्राद्ध माना है।[29]

अर्थात् पार्वण श्राद्ध पिण्डपितृयज्ञ है। पिण्डपितृयज्ञ भी अमावस्या को दिया जाता है।[30] और इसमें भी पिता, पितामह और प्रपितामह को पिण्डदान दिया जाता है।

एकोदिष्ट श्राद्ध

जो श्राद्ध एक व्यक्ति को उद्दिष्ट करके किया जाता है वह एकोद्दिष्ट श्राद्ध कहलाता है। यह श्राद्ध प्रेत के निमित्त मृत्यु उपरान्त ग्यारहवें दिन किया जाता है।[31] यद्यपि आश्वालयन गृह्यसूत्र में इस श्राद्ध के सन्दर्भ में किसी प्रकार का विधान नहीं है तथापि इसके वृत्तिकार ने उपर्युक्त मतों का समर्थन किया है। एकोदिष्ट श्राद्ध में अग्नौकरण एवं आवाहन नहीं होता।[32]

आभ्युदयिक श्राद्ध

अभ्युदये भवमाभ्युदयिकम् अर्थात् वह श्राद्ध जो अभ्युदय के समय किया जाता है, आभ्युदयिक श्राद्ध

23. मनुस्मृति : 3.212
24. बृहन्नारदीय पुराण : 28.79
25. तदेव : 28.80
26. बृहन्नारदीय पुराण : 28.80
27. द्रष्टव्य : आश्वलायन गृह्यसूत्र : 4.7.1
28. आश्वलायन गृह्यसूत्र परि- 2-14-13
29. द्रष्टव्य : याज्ञवल्क्य स्मृति : पृ. 88 : विज्ञानेश्वर भाष्य 1.217 की भूमिका
30. द्रष्टव्य : कात्यायन श्रौत्रसूत्र : 4.1.1
31. आश्वलायन गृह्यसूत्र 4.7.1 पर नारायण वृत्ति
32. द्रष्टव्य- याज्ञवल्क्य स्मृति : 1.251

"ऋषि अपने पिता के मरणोपरान्त प्रार्थना करता है— हे पितर! जिस स्थान को हमारे प्राचीन पितर पितामह आदि गए हैं, उसी मार्ग से आप भी जायें और उस स्थान पर पहुँचकर अमृतान्न से प्रसन्न होते हुए दोनों राजा यम तथा द्युतिमान् वरुण का दर्शन करे।"

कहलाता है। यह श्राद्ध विवाह तथा पुत्रजन्मादि के अवसर पर किया जाता है। इसका नाम नान्दी एवं वृद्धिश्राद्ध भी है। वृद्धिश्राद्ध नाम इसलिए पड़ा कि इसको करने से वंश में वृद्धि होती है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में मंगल कार्यों एवं सरोवर आदि की प्रतिष्ठा के समय इस श्राद्ध करने का विधान है।[33]

काम्य श्राद्ध

जो श्राद्ध किसी विशिष्ट फल के प्राप्ति के लिए किया जाता है, काम्य श्राद्ध कहलाता है। यथा स्वर्ग, संतति आदि प्राप्ति के लिए कृतिका या रोहिणी नक्षत्र में किया गया श्राद्ध।[34]

श्राद्ध का उल्लेख आश्वलायन गृह्यसूत्र (4.7.1), गोभिल गृह्य सूत्र (4.4.1), शांख्यायन गृह्यसूत्र (4.1.1) तथा कौशितिकी गृह्य सूत्र (3.14.1), गौतम धर्मसूत्र (2.6.1) आपस्तम्ब धर्मसूत्र (2.7.1), बौधायन धर्मसूत्र (2.8.1) एवं कठोपनिषद् (1.2.17) में दिया गया है।

मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि प्रमुख स्मृति ग्रन्थों में इसका वर्णन है इसके साथ उसका वर्णन प्रायः सभी पुराणों में किया गया है।

वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में भी उल्लेख है कि श्रीराम ने अपने पिता दशरथ के लिए पिण्ड दान किया था—

ऐङ्गुदं बदरैर्मिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे।
न्यस्य रामः सुदुःखार्त्तो रुदन् वचनमब्रवीत्।[35]

श्रीराम ने इंगुदी के गूदे में बेर मिलाकर उसका पिण्ड तैयार किया और बिछे हुए कुशों पर उसे रखकर अत्यन्त दुःख से आर्त हो रोते हुए यह बात कही—

इदं भुंक्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम्।
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवता॥[36]

महाराज, प्रसन्नतापूर्वक यह भोजन स्वीकार कीजिए, क्योंकि आजकल यही हमलोगों का आहार है। मनुष्य स्वयं जो अन्न खाता है, वही उसका देवता ग्रहण करते हैं। इसी रामायण में श्राद्ध में ब्राह्मण-भोजन का भी वर्णन है।[37]

महाभारत शान्तिपर्व में उल्लेख है कि महाभारत युद्ध के बाद महाराज युधिष्ठिर ने जाति, भाई और कुटुम्बी जनों में से जो लोग युद्ध में मारे गए थे, उन सबके लिए अलग अलग श्राद्ध करवाये।

ततो युधिष्ठिरो राजा ज्ञातीनां ये हता युधि।
श्राद्धानि कारयामास तेषां पृथगुदारधीः॥[38]

श्रीकृष्ण के महाप्रस्थान के पश्चात् युधिष्ठिर ने वसुदेव, श्रीकृष्ण, बलराम आदि का श्राद्ध किया था।[39]

33. द्रष्टव्य- आश्वलायन गृह्यसूत्र : 2.5.13; आश्वलायन गृह्यसूत्र-अनुवादक श्री यमुना पाठक की भूमिका
34. द्रष्टव्य- काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास : भाग 3 : पृ. 1215
35. रामायण : अयोध्याकाण्ड : 103.29
36. वाल्मीकि-रामायण : अयोध्याकाण्ड : 103.30
37. वाल्मीकि-रामायण : अरण्यकाण्ड : 11.56 : 61
38. महाभारत : शान्तिपर्व : 42.1
39. महाभारत : महाप्रस्थानिक पर्व, 1.10-11.

पितरों का वासस्थान

अब संक्षेप में पितर लोगों के वासस्थान पितर लोक का वर्णन करना प्रासंगिक प्रतीत होता है। वेद में पितर लोक का वर्णन है। ऋषि अपने पिता के मरणोपरान्त प्रार्थना करता है— हे पितर! जिस स्थान को हमारे प्राचीन पितर पितामह आदि गए हैं, उसी मार्ग से आप भी जायें और उस स्थान पर पहुँचकर अमृतान्न से प्रसन्न होते हुए दोनों राजा यम तथा द्युतिमान् वरुण का दर्शन करे।

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभि-
र्यत्र नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता
यमं पश्यसि वरुणं च देवम्।[40]

पुनः प्रार्थना करता है— हे मेरे पिता! तदनन्तर तुम उत्कृष्ट स्वर्ग नामंक स्थान में अपने पितरों के साथ मिलो और इष्टार्पूत कर्म के फल को प्राप्त करो। तत्पश्चात् अवद्य पाप को परित्याग कर आओ एवं शोभनयुक्त शरीर से गमन करो।

संगच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टा-
पूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वा यावद्यं पुनरस्तमेहि
संगच्छस्व तन्वा सुवर्चा॥[41]

ऋग्वेद में दसम मण्डल के 15वें सूक्त में पितरों के अवरलोक, मध्यम लोक एवं उत्तम लोक का वर्णन मिलता है और प्रार्थना किया गया है कि अवरलोक के पितर मध्यम लोक में जाये, मध्यम लोक के पितर उत्तम लोक में तथा उत्तम लोक के पितर मोक्ष को प्राप्त करें।

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु।[42]

हमारे जो पितर अवर लोक में स्थित हैं— वे मध्यम लोक में जायें, मध्यम लोक में रहनेवाले पितर उत्तम लोक में जायें तथा उत्तम लोक के वासी पितर मोक्ष को प्राप्त करें। कुटिलता से रहित होकर और यज्ञ या सत्य को जाननेवाले पितर वायव्य शरीरधारी बन गए हैं, वे पितृजन हमें आवाहन में रक्षा करें।[43]

उपर्युक्त ऋचाओं से स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में पितर लोक में जाने की अभिलाषा लोगों में थी।

तैत्तिरीय उपनिषद् 2.8.2 में पितृलोक का वर्णन है, जिसमें उल्लेख है कि पितृलोक का आनन्द एक मनुष्य आनन्द का लाख गुणा अधिक है तथा बृहदारण्यक उपनिषद् 4.3.33 में उल्लेख है कि एक मानुष आनन्द का सौ गुणा आनन्द पितर लोक में मिलता है।

अथ ये शतं मनुष्याणामानन्दाः, स एकः पितॄणां जितलोकानामानन्दो॥[44]

बृहदारण्यक उपनिषद् में तीन लोकों का वर्णन मिलता है— (क) मनुष्य लोक, (ख) पितर लोक एवं (ग) देवलोक।[45]

गीता में भी पितर लोक का उल्लेख है—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।[46]

देवताओं का पूजन करनेवाले देवता लोक को, पितरों के पूजनेवाले पितर लोक को, भूतो की पूजा करनेवाले भूतों को प्राप्त होती है और मेरा (भगवान्) पूजन करनेवाले भक्त भगवान् को प्राप्त होते हैं।

कठोपनिषद् में भी **"यथा स्वप्ने तथा पितृलोके"**[47] में पितर लोक का वर्णन मिलता है।

40. ऋग्वेद 10.14.7
41. ऋग्वेद : 10.14.8
42. ऋग्वेद 10.15.1; माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद : 18.48
43. द्रष्टव्य : माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद : 18.48 : महीधर भाष्य
44. बृहदारण्यक उपनिषद् 4
45. द्रष्टव्य : बृहदारण्यक उप : 1.5.16.
46. गीता : 8.25
47. कठोपनिषद् : 3.2.5.

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पितर लोक है, जिसमें साधु आचरण वाले पितर का वास होता है।

इस पिण्डपितृयज्ञ/श्राद्ध द्वारा अग्नि/परमात्मा से प्रार्थना किया जाता है कि जो पितर अभी तक पितर लोक नहीं पहुँच पाये वे अपने अभीष्ट लोक/शरीर को प्राप्त करें।

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा
मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां
यथावशं तन्वं कल्पयस्व॥[48]

श्राद्ध एक पवित्र अनुष्ठान है। इसे श्रद्धापूर्वक यथा विहित विधि से पितर के लिए करना चाहिए। हमारे सनातन धर्म का उद्देश्य है कि प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में तीन व्रतों का पालन अवश्य हो उपवास, संयम तथा दान। मृत्यु उपरान्त सामान्यतया दस दिनों की अशौच अवधि रखी जाती है, जिसमें कर्त्ता एवं कर्त्ता के पारिवारिक सदस्यों से अपेक्षा की गई है वे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें। इस अवधि में गरुड-पुराण, कठोपनिषद् आदि का श्रवण करें। साथ ही, श्राद्ध के अवसर पर यथाशक्ति योग्य पात्र (सत्पात्र) को दान दें। यज्ञ में दान, तपस्या और व्रत आवश्यक है, यह चित्त को शुद्धि करनेवाला है।

मृत्यु जीवन का एक यर्थाथ सत्य है। हमें अपने पूर्वजों के कृत्य को स्मरण करना चाहिए। साथ हमें भी अपने चरित्र को पावन बनाना चाहिए; क्योंकि मृत्यु से कोई वंचित नहीं रह सकता। कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है। अतः जीवन सदाचार पूर्ण तपःप्रधान होना चाहिए। श्राद्ध हमें यह स्मरण कराता है।

***

48. ऋग्वेद : 10.15.14

श्राद्ध किसे कहते हैं?

(क) संस्कृतं व्यञ्जनाढ्यञ्च पयोमधुघृतान्वितम्।
श्रद्धया दीयते यस्मात् श्राद्धं तेन निगद्यते॥

भली भाँति पकाया हुआ अन्न जिसके साथ व्यञ्जन हो, वह दूध, मधु तथा घी से युक्त हो वह श्रद्धा के साथ जहाँ अर्पित किया जाये उसे श्राद्ध कहते हैं।

बृहस्पति स्मृति, श्राद्धकाण्ड, 36. रंगास्वामी आयंगर (सम्पादक), बड़ोदा, 1941ई., पृ. 331.-

त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता

डा. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य
व्याकरणाध्यापक, श्रीराम संस्कृत महाविद्यालय, सरौती, अरवल।
पटना आवास- ज्योतिषभवन, शिवनगर कालोनी, मार्गसंख्या 10, बेऊर जेल के पीछे, पटना।

पुत्र के कर्तव्यों का यहाँ उल्लेख किया गया है कि जीवित रहते उनका कहना माने मरणोपरान्त क्षयतिथियों पर ब्राह्मण-भोजन करावे तथा गया जाकर पिण्डदान करे। लेखक ने स्पष्ट किया है कि जबतक पुत्री का भी विवाह नहीं हो जाता है, तब तक सारे पुत्री के भी सारे कर्तव्य पुत्र के समान हैं, किन्तु विवाह होने के बाद जब वह बहू बन जाती है तो गोत्र एवं शाखा में परिवर्तन के कारण उसके सारे आध्यात्मिक कर्तव्य श्वसुर के प्रति हो जाती है। इसी क्रम में लेखक ने पितर, पितृलोक, प्रेत तथा श्राद्ध की अवधारणा की व्याख्या की है। उन्होंने श्राद्धकर्म तथा गया में पिण्डदान को अनिवार्य कर्म माना है। लेखक ने न्यायशास्त्र की पद्धति अपनाते हुए लिखा है कि जीवित माता-पिता के रूप में पितर भिन्न हैं तथा मरणोपरान्त अर्यमाप्रमुख पितर भिन्न हैं। अतीत में मृत पितरों से व्यावर्तन के लिए सपिण्डीकरण से पूर्व सद्योमृत व्यक्ति के लिए 'प्रेत' शब्द का व्यवहार है, 'प्रेतयोनि' से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

भारतीय वैदिक ज्ञान संचार में अनादि सृष्टि की शृंखला नैरन्तर्य से ही पुनर्जन्म-सिद्धान्त पूर्ण परिपक्व परिपुष्ट है। व्यावहारिक दृष्टि से भी सद्योजात शिशु की दुग्धपानादि प्रवृत्ति पूर्वजन्म कृत अभ्यास का संकेतक है। जब से मानव जन्म लेता है तभी से उसके पालन-पोषण में पूर्व व्यवस्था अवस्था तथा इसके कारक गणों की महती भूमिका होती है। इसके सुपरिणाम से ही मानव जीवन अस्तित्व को प्राप्त करता है। अतः इस अस्तित्व के पीछे मुख्य रूप से देवकृपा, ऋषि कृपा तथा पितृकृपा का विशेष अवदान है। जन्मचक्र के आन्तरिक रहस्य में पूर्ण रूप से देवकृपा संचरित है, जिसका भागवतादि पुराणों में विशद वर्णन मिलता है। ऋषिकृपा का तात्पर्य है विशेष रूप से कश्यप ऋषि ने परात्पर ब्रह्म के संकल्प 'एकोऽहं बहु स्याम प्रजायेय' को पूर्ण करने में अवदान दिया है। वैसे पूर्व में सप्त महर्षि तथा सनकादि चार भाइयों के द्वारा विन्दु वंश तथा नाद वंश के द्वारा स्थावर जंगमात्मक जगत् की सृष्टि हुई है। इसका मूल कारण परब्रह्म ही है।

उसी परम पिता के पितृत्व का किंचिदंश मानव योनि में परिव्याप्त है, जिसके फलस्वरूप पितृमातृशक्ति के द्वारा जीव का जन्म तथा पालन होता है। अतः स्वभावतः कार्यकारण के पारस्परिक सम्बन्ध स्वस्थता हितकारिता के दृष्टिकोष से दैनिक जीवन में देवपूजन पितृतर्पण तथा ऋषिपूजन का प्रावधान है।

भागवत में भी कहा गया है—

देवानृषीन् नृभूतानि पितॄणात्मानमन्वहम्।
स्ववृत्त्यागतवित्तेन यजेत पुरुषं पृथक्॥15॥[1]

वर्णाश्रम विहित वृत्ति के द्वारा प्राप्त सामग्रियों से प्रतिदिन देवता, ऋषि मनुष्य, भूत, पितृगण तथा अपने आत्मा का पूजन करना चाहिए। यह उस मूल कारण रूप परमेश्वर की भिन्न-भिन्न रूपों में आराधना है।

बौधायन गृह्यसूत्र का मत है कि मनुष्य तीन प्रकार से ऋण धारण करता है—

विज्ञायते च— जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर् ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इत्येवमृणसंयोगं वेदो दर्शयति।[2]

यहीं आगे कहते हैं कि यह न केवल ब्राह्मणों के लिए बल्कि सभी वर्णों के लिए है—

सर्ववर्णेभ्यः फलवत्त्वादिति फलवत्त्वादिति॥[3]

इन्हीं तीनों ऋणों के सम्बन्ध में मनु ने कहा है कि इन्हें चुकता कर ही मोक्ष में मन लगावें। इन्हें चुकाये बिना मोक्ष में मन लगाने वाले पतित हो जाते हैं।

उक्त परिप्रेक्ष्य में पितृगण के लिए आश्विन कृष्ण पक्ष (पितृपक्ष) में अनिवार्य रूप से पितृगणों के लिए श्राद्धादि का विधान है, जिससे पुत्रत्व की सार्थकता सिद्ध होती है तथा पूर्वजों की प्रसन्नता से पुत्रादिकों का कल्याण होता है। देवी भागवत का कथन है—

जीवतो वाक्यकरणात्क्षयाहे भूरिभोजनात्।
गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता॥ 15॥[4]

इसके अनुसार पुत्र के तीन अनिवार्य कर्तव्य होते हैं—

1. **जीवित अवस्था में माता-पिता की आज्ञा का पालन करना।**
2. **मृत्यु की तिथि में बार बार यानी अनेक वर्षों तक ब्राह्मण भोजन कराना।**
3. **गया में पिण्डदान करना।**

इन तीनों व्यवहारों से पुत्रों की उपादेयता सिद्ध होती है।

इस पंक्ति को अनेक स्मृतियों में इसी प्रकार से उद्धृत किया गया है। बृहत्पाराशर स्मृति[5] के 6.196 में इसके आगे पीछे पुत्र के सभी कर्तव्य समझाये गये हैं।

पुत्र के कर्तव्य पर सबसे सुन्दर संकलन ऐतरेय ब्राह्मण के सप्तम पञ्चिका के तृतीय अध्याय अर्थात् 33वें अध्याय में आया है जहाँ 10 गाथाओं में पुत्र की महिमा गायी गयी है—

ऋणमस्मिन्संनयत्यमृतत्वं च गच्छति।
पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम्॥

यदि पिता अपने जीवित रहते पुत्र का मुख देख लेता है तो वह अमर हो जाता है।

यावन्तः पृथिव्यां भोगा यावन्तो जातवेदसि।
यावन्तो अप्सु प्राणिनां भूयान्पुत्रे पितुस्ततः॥

प्राणियों के लिए जितने पृथ्वी पर भोग हैं जितने अग्नि में भोग हैं अर्थात् देवयज्ञादि से प्राप्त फल हैं तथा जितने जल से उत्पन्न भोग हैं वे सारे के सारे पुत्र में पिता को प्राप्त हो जाते हैं।

शश्वत्पुत्रेण पितरोऽत्यायन्बहुलं तमः।
आत्मा हि जज्ञ आत्मनः स इरावत्यतितारिणी॥

एक भी उत्पन्न पुत्र से पितृगण (यहाँ पितरौ द्विवचन न होकर पितरः का प्रयोग है अतः मात-पिता के साथ-साथ पितामहादि का भी बोध होगा।) अंधकार रे लोक को पार कर जाते हैं। आत्मा ही आत्मा को जन्म देती है और वह अन्न से भरी इस पृथ्वी के लोक को पार लगाने वाली होती है।

किं नु मलं किमजिनं किमु श्मश्रूणि किं तपः।
पुत्रं ब्रह्माण इच्छध्वं स वै लोकोऽवदावदः॥

मल रूप गृहस्थाश्रम कौन सुख देगा? अजिन धारण किया जानेवाला ब्रह्मचर्य कौन सा सुख

1 भागवत, 7.14.15.
2 बौधायन गृह्यसूत्र, 2.9.7.
3 बौधायन गृह्यसूत्र- 2.9.14.
4 देवीभागवत, 6.4.15
5 बृहत्पाराशरस्मृति, स्मृति-सन्दर्भ, भाग 2, गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता, 1952ई. पृ. 772

देगा? दाढ़ी-मूँछों से भरा वानप्रस्थ कौन सुख देगा? तपस्या से युक्त संन्यास कौन सा सुख देगा? अतः पुत्रकी इच्छा करो उस सुख का बखान नहीं किया जा सकता।

अन्नं ह प्राणः शरणं ह वासो
रूपं हिरण्यं पशवो विवाहाः।
सखा ह जाया कृपणं ह दुहिता
ज्योतिर्ह पुत्रः परमे व्योमन्॥

अन्न प्राण है, वस्त्र रक्षा करता है, स्वर्ण केवल रूप वाला है, विवाह तो पाशविक प्रवृत्ति के लिए है। पत्नी केवल मित्र होती है, पुत्री विवाह के बाद वियोग होने के कारण दुःख देती है पर पुत्र परम आकाश की ज्योति के समान है।

पतिर्जायाम्प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम्।
तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते॥

पति स्वयं माता रूपी पत्नी में प्रवेश करता है तथा गर्भ के रूप में स्थित होकर दसवें महींने में उत्पन्न होता है।

तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः।
आभूतिरेषा भूतिर्बीजमेतन्निधीयते॥

पत्नी को जाया इसलिए कहते हैं क्योंकि उससे वह पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है। इसी प्रकार पत्नी को भूति तथा आभूति भी कहते हैं क्योंकि यह बीज धारण करती है।

देवाश्चैतामृषयश्च तेजः
समभरन्महत्देवा मनुष्यानब्रुवन्नेषा।
वो जननी पुनः नापुत्रस्य लोकोऽ-
स्तीति तत्सर्वे पशवो विदुः॥

इस स्त्री में देवों और ऋषियों ने महान् तेज धारण कराया है और फिर देवगण ने मनुष्यों से कहा- यह स्त्री तुमलोगों की जननी है।

नापुत्रस्य लोकोऽस्ति तत्सर्वे पशवो विदुः।
तस्मात्तु पुत्रो मातरं स्वसारं चाधिरोहति॥

अपुत्र के लिए कोई लोक नहीं है यह बात पशु भी जानते हैं। अतः पशुजगत् में पुत्र माता और बहन में भी संतान उत्पन्न कर लेते हैं।

एष पन्था उरुगायः सुशेवो
यं पुत्रिण आक्रमन्ते विशोकाः॥
तं पश्यन्ति पशवो वयांसि च
तस्मात्ते मात्राऽपि मिथुनी भवन्ति।

जिसे पुत्र वाले शोकरहित होकर पाते हैं वह मार्ग महान् व्यक्तियों के द्वारा प्रशंसनीय है। उसी मार्ग को पशु और पक्षी भी जानते हैं अतः वे माता के साथ भी मैथुनरत होते हैं।

यहाँ एक बात ध्यातव्य है कि सर्वत्र 'पुत्र' शब्द का प्रयोग 'संतति' के अर्थ में हुआ है। 'पुत्र' शब्द यहाँ बेटा तथा बेटी दोनों के लिए आया है; अतः पशु जगत् सन्दर्भ में भी इन गाथाओं में पुत्र शब्द व्यवहृत है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि पिण्डदानादि में पुत्र तथा अविवाहित पुत्री का समान अधिकार है। विवाह हो जाने के बाद महिला अपने श्वसुर का पिण्डदानादि कर्म तो कर सकती है, किन्तु पिता की नहीं, क्योंकि विवाह के बाद गोत्र तथा शाखा बदल जाती है। अतः श्राद्धादि के प्रसंग में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है।

गया में पिण्डदान करने का प्रसंग वाल्मीकि रामायण में आया है। अयोध्याकाण्ड में भरत को अयोध्या लौटने का उपदेश देते हुए राम कहते हैं—

ऋणान्मोचय राजानं मत्कृते भरत प्रभुम्।
पितरं चापि धर्मज्ञं मातरं चाभिनन्दय॥

हे भरत, मेरे लिए राजा दशरथ को ऋणों से मुक्त करो अर्थात् उनके द्वारा किये जाने वाले तीनों प्रकार के ऋणों से मुक्ति के उपाय अब मेरे कन्धे पर आ पड़ा है अतः मेरे बदले में तुम यह कार्य करो। दिवंगत धर्मज्ञ पिता तथा माताओं को प्रसन्न करो।

श्रूयते हि पुरा तात श्रुतिर्गीता यशस्विना।
गयेन यजमानेन गयेष्वेव पितृऽन् प्रति॥

ऐसा सुना जाता है कि प्राचीन काल में यशस्वी यजमान गय ने गया में पितरों से यह प्रार्थना की थी।

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात् पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन् यत्पाति वा सुतः॥

पुं नामक नरक से जो बेटा पिता को त्राण दिला है, वह पुत्र कहलाता है अथवा पिता की जो रक्षा करता है वह पुत्र कहलाता है।

एष्टव्या बहवः पुत्रा गुणवन्तो बहुश्रुताः।
तेषां वै समवेतानामपि कश्चिद् गयां व्रजेत्॥[6]

इसीलिए बहुत गुणवान् तथा विद्वान् पुत्रों की कामना करनी करनी चाहिए ताकि उस सभी में से एक भी यदि गया चला जाये तो पितरों का उद्धार हो जाता है।

यहाँ श्रीराम के कहने का अभिप्राय है कि हम चार भाई हैं इनमें से अकेला भरत भी पिता के प्रति कर्तव्य को निभा सकता है।

यह श्लोक महाभारत में भी वनपर्व में तीर्थयात्रा प्रसंग में आया है—

एष्टव्या बहवः पुत्राः यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥[7]

अर्थात् हमें अनेक पुत्रों की कामना करनी चाहिए ताकि इनमें से कम से कम एक भी गया चला जाये।

इसी तथ्य को बृहस्पति-स्मृति में भी दुहराया गया है—

अपुत्रेण सुतः कार्यो यादृक्तादृक्प्रयत्नतः।
पिण्डोदकक्रियाहेतोर्धर्मसंकीर्तनस्य च॥

विना पुत्र वाला व्यक्ति जिस किसी भी प्रकार से पिण्डोदक क्रिया के लिए और धर्म-संकीर्तन के लिए सन्तान उत्पन्न करे।

काङ्क्षन्ति पितरः पुत्रान्नरकापतभीरवः।
गयां यास्यति यः कश्चित्सोऽस्मान्संतारयिष्यति॥

नरक से डरे हुए पितर पुत्र से इच्छा रखते हैं कि कोई एक पुत्र यदि गया चला जाये तो वह हमारा उद्धार कर देगा।

यथा जलं कुप्लवेन तरन्मज्जति मानवः।
तद्वत्पिता कुपुत्रेण तमस्यन्धे निमज्जति॥

जैसे खराब नाव से नदी पार करता हुआ मनुष्य डूब जाता है, उसी प्रकार दुष्ट पुत्र से पिता अन्धकार भरे तमोलोक में डूब जाते हैं।

करिष्यति वृषोत्सर्गं इष्टापूर्तं तथैव च।
पालयिष्यति वार्धक्ये श्राद्धं दास्यति चान्वहम्॥[8]

पितर इच्छा करते हैं कि मेरा पुत्र बैल उत्सर्ग करेगा, इष्ट एवं पूर्त करेगा तथा बुढ़ापे में पालन करेगा और दिनानुसार श्राद्ध करेगा।

इस प्रकार ऊपर जो पुत्र के लिए विहित कर्म कहे गये हैं, उनमें से प्रथम मुक्य उपादेय है जो आज खण्डित एवं नष्ट-भ्रष्ट हो रहा है, जिसके कारण आश्रम धर्म के पालन में विविध प्रकार के कष्ट आ रहे हैं। अतः हमारा प्रथम कर्तव्य बनता है कि हम जीवित माता-पिता के वचनों का पालन करें, भूलकर भी अशिष्ट, मानसिक कष्टदायक व्यवहार न करें। यदि जीवतो वाक्यकरणात् का अनुपालन हम करते हैं तो यह हमें श्रेय की ओर ले जाने में पूर्ण समर्थ है।

लेकिन यहाँ विचारणीय है कि क्या केवल जीवित माता-पिता के प्रति ही हमारा कर्तव्य बनता है? इसेस पूर्व जो दिवंगत हो चुकी पीढ़ियाँ हैं उनके प्रति हमारा कोई कर्तव्य नहीं। वस्तुतः जबतक माता-पिता जीवित हैं तब तक अपने दिवंगत पितरों के प्रति सारा कर्तव्य उनका है। माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त वे अपने सारे कर्तव्य पुत्र पर सौप जाते हैं। इसीलिए उपर्युक्त

6 वाल्मीकि-रामायण : 2.107.10-13
7 महाभारत वनपर्व, तीर्थयात्रा पर्व, अध्याय 84. प्रथम भाग, कोलकाता संस्करण 1834ई. पृ. 533.
8 बृहस्पति स्मृति : 1.26.88-91

वचन में कहा गया है— **क्षयाहे भूरि भोजनात्**। वास्तव में माता-पिता की जब मृत्यु हो जाती है तो वे अपना कर्तव्य पुत्र पर सौंप जाते हैं, फलतः पितामहादि मृत पूर्वजों के लिए भी जो उनके पिता के कर्तव्य थे वे पुत्र के कन्धे पर आ जाते हैं अतः प्रतिदिन नहीं तो वर्ष में कम से कम पितृपक्ष में तर्पणादि पितृकर्म अवश्यकर्तव्या की कोटि में आ जाते हैं। हमारे शास्त्रकारों ने इस नित्यकर्म माना है, जिसके न करने पर वह प्रायश्चित्त का भागी होता है।

'श्राद्ध' शब्द का अर्थ

वैदिक धर्म संचार में 23 या 16 संस्कारों में अन्त्येष्टि संस्कार का विशेष महत्त्व है। संस्कारों का सम्पूर्ण सम्बन्ध मानव शरीर से है। मानव योनि कि लिए ही सम्पूर्ण शास्त्रीय विधान हैं। अन्त्येष्टि संस्कार की पूर्णता द्वादशदिवसीय श्राद्ध विधि से ही होती है। श्राद्ध की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—

प्रेतं पितॄश्च निर्दिश्य भोज्यं यत्प्रियमात्मनः।
श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिचक्षते॥[9]

प्रेत तथा पितरों के उद्देश्य से श्रद्धा के साथ अपन प्रिय भोज्य पदार्थ प्रदान करना श्राद्ध कहलाता है। यहाँ ध्यातव्य है कि प्रेत शब्द एकवचन में है तथा पितॄन् बहुवचन है। स्पष्ट है कि **यहाँ 'प्रेत' शब्द से केवल एक उसी व्यक्ति का बोध होता है जो सद्यःमृत हो। अतः पितर से व्यावर्तन के लिए 'प्रेत' शब्द का पृथक् व्यवहार हुआ है। अतः 'प्रेत' शब्द अदृश्य अशुभ शरीरधारी का वाचक नहीं है। प्रकर्षेण इतः गतः इति प्रेतः**। प्रकृष्टता के साथ जिनका गमन हुआ है— वह प्रेतशब्दवाच्य है। मानव इन्द्रियातीत सूक्ष्मगति ही प्रकृष्टता है। उत्तरक्षणावच्छिन्न मरणासन्न प्राणी को देखकर परिजन समझ जाते हैं कि कुछ क्षण के लिए है। परिजन देखते रह जाते हैं इसी मध्य प्राण का मन से विच्छेद हो जाता है जिसे मृत्यु शब्द से अभिप्रेत किया जाता है। मृङ् प्राणवियोगे धातु से मृत्यु शब्द की निष्पत्ति होती है। आत्मा अजर-अमर है, अनादि सृष्टि में अनादि कर्म पालनप्रवाह में शुभ-अशुभ कर्मों की सम्पृक्तता आत्मा को निसर्गतः प्राप्त है। तदनुसार—

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा॥[10]

संक्षेप में शास्त्रविहित शुभ आचरण करने वाले उत्तम योनि को प्राप्त करते हैं, पर शास्त्रविरुद्ध अशुभ आचरण करने वाले पापयोनियों को प्राप्त करते हैं। एतावता सुस्पष्ट सिद्ध है कि कर्मानुसार मरणानन्तर शरीरधारी आत्मा को शुभ-अशुभ योनियों में जाना पड़ता है। यह सम्बन्ध अदृश्य तथा ईश्वरीय शक्ति के अधीन और तर्कातीत है। इस विषय में शास्त्रालम्बन ही विवेकशीलता है।

मृत्युकाल में वासना (अन्तिम इच्छा) के अनुकूल आत्मा का अग्रिम संचार होता है। वह अग्रिम संचार शुभ हो एतदर्थ वंशजों तथा हितैषियों के द्वारा श्राद्ध का विधान वैदिक काल से ही है।

कुछ सिरफिरे जनों ने इस विषय में मनगढन्त अपलाप किया है, जो सर्वथा वेदसिद्धान्त के विरुद्ध है। कात्यायन स्मृति के अनुसार श्राद्ध को पितृयज्ञ कहा गया है—

श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात् पित्र्योर्बलिरथापि वा।
स्वर्गापवर्गयोः सिद्धिं पञ्चयज्ञात् प्रचक्षते॥[11]

ऋग्वेद में भी कहा गया है—

9. कमलाकरभट्ट कृत निर्णयसिन्धु में श्राद्ध प्रकरण के आरम्भमें उद्धृत मरीचि का वचन।
10. छान्दोग्योपनिषद्, 5.10.7

यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश
वो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम्।
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं
स घर्ममिन्वात्परमे सधस्थे॥[12]

अर्थात् कच्चे मांस को दाहसंस्कार में भक्षण करने वाला जो श्मशानाग्नि वह अग्नि मेरे घर में प्रवेश कर गये है उस अग्नि को मैं पितृयज्ञ के निमित्त शुद्ध कर स्थापित करता हूँ। इस ऋग्वेदीय मन्त्र के अनुसार श्राद्ध वैदिक काल से लोक स्वीकृत है। अतः श्राद्ध को कल्पित मानना दुराग्रहमूलक है।

अथर्ववेद का कथन है—

जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने
पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः॥[13]

और भी

परापरैता वसुविद्वो अस्त्वधा
मृताः पितृषु सं भवन्तु ॥48॥[14]

इन मन्त्रों से मरणान्तर गति का स्वरूप प्राप्त होता है। अतः श्राद्धकर्म का वैदिक मूल है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि पितर शब्द का विशेष अर्थ वेद के अनुसार है।

‘पितर’ कौन होते हैं?

यहीं से ‘पितर’ की अवधारणा आरम्भ होती है। **यद्यपि विगत शताब्दी में मनमाने ढंग से केवल जीवित माता-पिता को ही पितर मान लेने का आग्रह किया गया है तथा इसी परिभाषा के आधार पर मृत पूर्वजों का अस्तित्व समाप्त कर वैदिक भावना को ठेस पहुँचायी गयी है।** ऋग्वेद कहता है—

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्र नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यसि वरुणं च देवम्।[15]

हे पितर! जिस स्थान को हमारे प्राचीन पितर पितामह आदि गए हैं, उसी मार्ग से आप भी जायें और उस स्थान पर पहुँचकर स्वधा से प्रसन्न होते हुए दोनों राजा यम तथा वरुणदेव का दर्शन करें।

यहाँ स्पष्ट है कि पितर का अर्थ जीवित माता-पिता नहीं, बल्कि वे पूर्वज हैं जिनका अग्निसंस्कार हो चुका है। अतः वेद में पितर के लिए ‘अग्निष्वात्ताः’ तथा ‘अग्निदग्धाः’ ये दो शब्द आये हैं। यदि केवल जीवित माता-पिता ही ‘पितर’ शब्द से अभिप्रेत होते तो जीवतो वाक्यकरणात् के अर्थ में ही शेष दोनों की निवृत्ति हो जाती अलग से कहने की आवश्यकता ही नहीं थी। किन्तु जब महाभारत, रामायणादि मे **गयां गच्छेत्** और **क्षयाहे भूरिभोजनात्** कहा गया है तो स्पष्ट है कि यहाँ पितृकर्म का उल्लेख हुआ है और अग्निसंस्कार किए गये पितर का भी अस्तित्व है। उनके प्रति भी हमारा कर्तव्य बनता है।

उदन्वतीद्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितरआसते।[16]

उदन्वती द्यौः सबसे नीचे है, **पीलुमती** बीच में है तथा तीसरी द्यौः **प्रद्यौः** है जहाँ पितर रहते हैं। ये पितर निश्चित रूप से पालयतीति पिता से भिन्न हैं। ये जीवित माता-पिता नहीं हो सकते। ‘पितर’ शब्द की स्वतन्त्र सिद्धि भी अच् प्रत्यय से होती है। होती है। गीता में भी **‘पितॄणामर्यमा चास्मि’**[17] में जीवित माता-पिता को ही पितर मान लेना अज्ञानता है। कव्यवाह, अनल, सोम, यम अर्यमा, अग्निष्वात्त तथा बर्हिषद् ये सात पितर हैं, इनमें अर्यमा श्रेष्ठ माने गये हैं। अतः पितर शब्द का जो अर्थ आर्य समाजी लोग लगाते हैं वह मनगढ़न्त है।

11. बृहद्धर्मपुराण, 5.23. पं. हरप्रसाद शास्त्री (सम्पादक), बिबिलियोथेका इंडिका सीरीज, भाग 1, कलकत्ता, 1888ई. पृ. 514.
12. ऋग्वेद 10.16.10.
13. अथर्ववेद 12.2.45.
14. अथर्ववेद 18.4.48.
15. ऋग्वेद 10.14.7.
16. अथर्ववेद 18.2.48.
17. गीता 10.29.

'प्रेत' शब्द का अर्थ

प्रेत शब्द का सीधा अर्थ है— **प्रकर्षेण गतः**। इस शब्द का व्यवहार सद्यः मृत व्यक्ति के लिए व्यवच्छेदकता हेतु है। पितामहादि जो पूर्व में दिवंगत हो चुके हैं वे भी पितर कहे जाते हैं। सद्यःमृत व्यक्ति का निर्देश करने के लिए प्रेत शब्द व्यवहार्य है ताकि पितर से व्यवच्छेदकता निरूपित हो सके। अन्यथा सपिण्डीकरण से पूर्व सद्यःमृत व्यक्ति का बोध कैसे होगा? यदि पिता आदि शब्द से ही सद्यःमृत को बोध कराया जाये तो जिस स्थिति में लोगों को माता-पिता से भिन्न व्यक्ति का श्राद्ध करना पड़ता है वहाँ अतिपात होगा। मत्पुत्रत्वकर्यता की स्थिति में भी सद्यःमृत प्राणी का ही बोध हो इसके लिए श्राद्ध-एकोद्दिष्टादि में प्रेतत्व शब्द की योजना होती है। इससे प्रेतयोनि का अर्थ लेना सर्वथा अज्ञानता है। श्राद्धादि में प्रयुक्त 'प्रेत' शब्द का एक ही अर्थ है— सद्योमृत व्यक्ति, इसका कोई दूसरा अर्थ नहीं हो सकता है। 'प्रेतयोनि' का अर्थ लेना सर्वथा अनुचित है।

इस प्रकार, पुत्र अर्थात् संतति का कर्तव्य है कि वे अपने पूर्वजों के लिए पितृकर्मों का निर्वाह करे। व्यवहार में माता-पिता, पितामह-पितामही, प्रपितामह-प्रपितामही, वृद्धप्रपितामहादि, वृद्धप्रपितामह्यादि, माता मह-मातामही, प्रमातामह-प्रमातामही, वृद्धप्रमाता-महादि, वृद्धप्रमातामह्यादि —इन 14 पितरों को जल से तृप्त करें। तर्पण के समय ब्रह्मा से लेकर अपने दिवंगत पिता तक को जल दें, इस जन्म तथा अन्य जन्म के सभी बन्धु-बान्धवों तथा अपने कुल के संततिहीन व्यक्ति के लिए भी जल दें। इतने व्यापक कर्तव्यों को समेटते हुए तीन प्रकार से पुत्रता मिलने की बात शास्त्रों में कही गयी है।

इति।

श्राद्ध किसे कहते हैं?

(ख) तत्स्वरूपमाह पृथ्वीचन्द्रोदये मरीचिः-

प्रेतं पितॄंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत् प्रियमात्मनः।
श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम्।

श्राद्ध का स्वरूप पृथ्वीचन्द्रोदय में उद्धृत मरीचि ने कहा है-

प्रेत और पितरों को उद्दिष्ट कर जो अपना प्रिय भोज्य पदार्थ जहाँ श्रद्धापूर्वक अर्पित किया जाता हो, उसे श्राद्ध कहते हैं।

भट्ट कमलाकर, निर्णयसिन्धु, तृतीय परिच्छेद उत्तरार्द्ध, निर्णयसागर प्रेस, 1901ई., पृ. 279-

अंकपल्लवी

(अंक के माध्यम से शब्दों की सूचना)

डा. ममता मिश्र 'दाश'
संस्थापक सचिव,
प्रो. के.वी. शर्मा रिसर्च इंस्ट्च्यूट, अड्यार, चेन्नई

पाण्डुलिपि की पुष्पिकाओं में लेखनकाल का उल्लेख करने के लिए अथवा ज्यौतिष के ग्रन्थो में शब्द से संख्या का बोध कराने की पद्धतियाँ प्रचलित हैं। यह बोध अर्थानुसार होता है जैसे 0 के लिए आकाश एवं उसके पर्याय, 1 के लिए पृथ्वी, चन्द्र आदि, 2 के लिए नेत्र, बाहु, पक्ष आदि। इसी प्रकार 16 के लिए भूप तथा 32 के लिए दन्त शब्द का प्रयोग प्रचलित है। यहाँ ऐसी पद्धति दी जा रही है, जिसमें संख्या के लेखन से शब्द का बोध होता है। यह जैन पाण्डुलिपियों में मिलती है। इसे 'अंकपल्लवी' कहा गया है। इस अंकपल्लवीकी विशेषता है कि 65।65।512 अंक लिख देने पर 'ममता' शब्द का बोध होता है। इस शोध आलेख में संख्या के लिए शब्दों के प्रयोग के चार नियमों का वर्णन करते हुए इस अंकपल्लवी का विवरण दिया गया है। विशेष रूप से पाण्डुलिपि विज्ञान के जिज्ञासु इससे लाभ उठायेंगे।

अंकों की सूचना देने के लिये शब्दों का प्रयोग भारतीय परम्परा में हजारों सालों से चला आ रहा है।

दक्षिणा गायत्रीसम्पन्ना ब्राह्मणस्य।

बृहतीसम्पन्नाः पशुकामस्य (लाट्यायन श्रौतसूत्र)।

यहाँ 'गायत्री' शब्द का प्रयोग संख्या 24 के लिये तो 'बृहती' शब्द का प्रयोग संख्या 36 के लिये हुआ है। संख्या के लिये शब्द का व्यवहार हर किसी विषय में देखने को मिलता है। जैसे पुराण, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि। पर शब्दों की सूचना देने के लिये अंक या संख्या का प्रयोग भारतीय परम्परा कहीं मिलता है क्या? इसी विषय पर इस निबन्ध में आलोचना की जायेगी।

संख्या के लिये शब्दों का प्रयोग चार प्रकार से होते हैं

1. आर्यभटीय नियम
2. कटपयादि नियम
3. भूतसंख्या नियम और
4 अक्षरपल्ली नियम।

आर्यभटीय नियम –

इस नियम की सूचना देने के लिये आर्यभट ने अपनी आर्यभटीय में सूचना दी है –

वर्गाक्षराणि वर्गेऽक्षराणि कात् ङमौ यः।
खद्विनवके स्वरा वर्गेऽवर्गे नवान्त्य वर्गे वा॥ (1.2)

वर्गाक्षर जैसे क-म तक अक्षरों की संख्या यथाक्रम 1-25 होती है, परन्तु वर्गीय स्थान में इनका प्रयोग होता है।

अवर्गीय अक्षरों की संख्या य-ह तक 30-100 यथाक्रम होती और अवर्गीय स्थानों में प्रयुक्त होती है। आर्यभट ने 9 स्वरों को यानी मूल स्वरों को लिया है।

इनके हिसाब से सूर्य की परिक्रमा (पूर्वदिशा की ओर) का समय 'ख्युघृ' मतलब 43,20,000 है तो चन्द्र की गति 'चयगियिङुशुछ्लृ' — 5,77,53,336 है।

पर बाद में यह नियम इतना लोकादृत नहीं हो सका। शायद उच्चारण क्लिष्टता एक कारण हो सकता है।

कटपयादि नियम—

कटपयादि नियम को समझाने के लिये महासिद्धान्त में उल्लिखित है —

रूपात् कटपयपूर्वा वर्णा वर्णक्रमेण भवत्यङ्काः।
ञानौ शून्यं, प्रथमार्थे आ छेदे ऐ तृतीयार्थे ॥(1.2)

क, ट, प, य की गणना 1 से होती है, यानि अगर क —1 तो ख—2, ग— 3, घ— 4। वैसे ट— 1 तो ठ— 2। ञ औ न का मूल्य शून्य है।

इस नियम को समझाने के लिये और एक श्लोक शङ्करवर्मकृत सद्रत्नमाला से —

नञावचश्च शून्यानि संख्याः कटपयादयः।
मिश्रे तूपान्त्यहल् संख्या न च चिन्त्यो हलस्वरः ॥

उदाहरण स्वरूप—

गोपीभाग्यमधुव्रात शृङ्गीशोदधिसन्धिग।
खलजीवितखाताव गलहालारसन्धर॥

मूलतया यह श्रीकृष्ण के लिये एक प्रार्थना प्रतीत होता है, लेकिन वास्तव में यह π (Pai) का मूल्य दर्शाता है —

0.31415926535897932384626433832792

महाभारत के **"ततो जयमुदीरयेत्"** यहाँ कटपयादि नियम के अनुसार जय का अर्थ 18 होता है। संगीत ग्रन्थों में इसका प्रयोग भी बहुत मिलता है।

भूतसंख्या नियम —

यह नियम बहुत लोकप्रिय है। बहुत ग्रन्थों में इसका उल्लेख है और अभी भी प्रचलित है। पुष्पिका और उत्तरपुष्पिकाओं में भूत संख्या का प्रयोग बहुल है। 1 संख्या की सूचना के लिये शशी और शशी के समस्त पर्यायवाची शब्द, संख्या 2 के लिये भुज, चक्षु और इनके पर्यायवाची शब्द, 32 के लिये रद शब्द,27 के लिये नक्षत्र शब्द, 49 के लिये तान या पवन आदि शब्दों का बहुल प्रयोग उपलब्ध है।

4 अक्षरपल्ली नियम —

अक्षरों की सहायता से मातृकाओं में पत्रसंख्या देना। इसमें बहुत विविधता दिखायी देती है। कहीं 'न' का मतलब 1 है तो कहीं 'क' का मतलब 1। एक न— न्न— न्य— ष्क नियम भी है जहाँ पत्र में 'न' हो तो 1, न्न —2, न्य— 3, ष्क्र— 4, झ— 5।

एक और भी नियम है (तमिळ) जहाँ क— 1, उ— 2, न— 3 इत्यादि। ग्रन्थलिपि की मातृकाओं में लगभग तमिळ नियम जैसे पत्रसंख्या दी जाती है।

ये सब संख्या की सूचना देने के लिये शब्दों का प्रयोग।

अंकपल्लवी —

परन्तु भारतीय परम्परा में ऐसी भी व्यवस्था है— शब्दों की सूचना देने के लिये अंक या संख्या का प्रयोग। भारतीय परम्परा में यह अंकपल्लवी के नाम से ज्ञात है। डा. सत्येन्द्र अपने पाण्डुलिपि विज्ञान[1] पुस्तक में अंकपल्लवी के सन्दर्भ में बताया है कि अंकपल्लवी में पहला अ वर्ण का द्योतक, दूसरा उस वर्ग के अक्षर का और तीसरा मात्रा का द्योतक होता है। जैसे 'भाव'

1. डा. सत्येन्द्र, पाण्डुलिपि विज्ञान, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1978, पृ. 204

"महाभारत के "ततो जयमुदीरयेत्" यहाँ कटपयादि नियम के अनुसार जय का अर्थ 18 होता है। संगीत ग्रन्थों में इसका प्रयोग भी बहुत मिलता है।"

"पर अभी अनुध्यान करने का विषय है कि, क्या ऐसी लिखनशैली सिर्फ यही एक मातृका में मिलती है या ऐसी व्यवस्था और कहीं अपनायी गयी है।"

शब्द को बताने के लिये अंक '642। 74' का प्रयोग। यहाँ 642 का अर्थ है 'भा' तो 74 का अर्थ है 'व'। परन्तु सत्येन्द्र के मत में अकार की सूचना के लिये 1 का प्रयोग होता है। जैसे 651 का अर्थ होता है अक्षर 'म'।

इसी व्यवस्था पर आधारित एक मातृका आचार्य श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमन्दिर, श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा, गान्धीनगर, गुजरात में संरक्षित है जिसकी संख्या है— 46714। यह हमारा परम सौभाग्य है कि इस केन्द्र में लगभग तीन लाख मातृकाएँ सुरक्षित हैं, और यहाँ पर गवेषकों का स्वागत होता है।

इस अंकपल्लवी प्रतिलिपि का विषय है— पार्श्वजिनस्तवन।[2]

अंकपल्लवी की धारा से उल्लिखित यह प्रति कागज के एक पन्ने में दोनों तरफ लिखा गया है। यहाँअंक को समझने के लिये बता दें कि अ से ह तक पूरी अक्षरमाला 8 वर्ग में विभाजित है। पूरे ग्रन्थ में शून्य '0' का प्रयोग कहीं पर उपलब्ध नहीं है।

वर्ग	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
1	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
2	क	ख	ग	घ	ङ							
3	च	छ	ज	झ	ञ							
4	ट	ठ	ड	ढ	ण							
5	त	थ	द	ध	न							
6	प	फ	ब	भ	म							
7	य	र	ल	व								
8	श	ष	स	ह								
मात्रा		ा	ि	ी	ु	ू	े	ै	ो	ौ	ं	ः

2. सं. संजय कुमार झा, अंकपल्लवी लिपिबद्ध पार्श्व जिनस्तवन, श्रुतसागर (मासिक पत्रिका), Vol. 3, issue-12, May, 2017 पृ 15 -24

642।	74।	847 ।	83।	824।	642 ।	74।	64।	53।	531 ।	331 ।	531 ।	542 ।	721 ।		
भा	व	हे	स	षी(खी)	भा	व	भ	ग	द	ज	द	धा	र		
616	339	847	83	824	616	339	847	612	83	333	457	83	739	3 3 4	
पू	जो	है	स	षी(खी)	पू	जो	हे	पा	स	जि	णे	स	लो	जी ।	
122	83	837	45	847	83	824	122	83	837	45	722	71	65	7 3 2	7 2
आ	स	से	ण	हे	स	षी (खी)	आ	स	से	ण	रा	य	म	ला	र
742	652	847	83	824	742	652	847	216	828	841 1	83	751	334	1	
वा	मा	हे	स	षी(खी)	वा	मा	हे	कू	खे	हं	स	लो	जी। 1।		

भाव हे सषी(खी) भाव भगद जद धार
पूजो है सषी(खी) पूजो हे पास जिणेसलो जी।
आससेण हे सषी(खी) आससेण राय मलार
वामा हे सषी(खी) वामा हे कूखे हंसलो जी।1।

लिखन शैली-

इसकी प्रतिलिपि संवत् 1789 में हुई थी जिसकी सूचना 8312।74।51।83।51।72। 89 में दिया गया है। यहाँ89 का मतलब 89 ही है। 8312-सं, 74-व, 51 -त, 83-स, 51-त, 72-र 89। तो प्रचलिताब्द 1732 है। हर एक अक्षर की सूचना के बाद एक दण्ड '।' दिया गया है। कुछ अक्षर को दर्शाने के लिये अंक में मात्रा दी गयी है, जैसे 84 या 74। कभी कभी अंक के साथ साथ अक्षर की सूचना भी उपलब्ध है जैसे 8श इसका मतलब शश नहीं है या शै नहीं है, श ही है। इसमें संयुक्त अक्षर का उपयोग नहीं हुआ है। कहीं-कहीं नाम के पूर्व में श्री शब्द दिया हुआ है, सम्पादक के मत से यह प्रक्षिप्त या अधिक पाठ हो सकता है। कुछ शब्द देवनागरी में लिखे हुए मिलते हैं। सखी के स्थान पर सषी शब्द का व्यवहार हुआ है। संयुक्ताक्षर प्रायतः नहीं है। प्रभु की जगह परभि (भु) आदि।

अन्तिम वाक्य-

इति श्रीपार्श्वजिनस्तवन संपूरण।

इसके अतिरिक्त प्रतिलेखक ने अपने नाम, स्थलादि का कोई उल्लेख नहीं किया है।

लिखनकार का मन्तव्य –

अंकपल्लवीकृतं स्तवनं। लिखावतं पत्रांतरे विलोक्य। विद्वान् स पुमान्। यादृशं तादृशं भवेत् ॥ 1 ॥ शुभं भवतु दिने 2। श्रीभव0 लिखकर प्रति संपूर्ण किया गया है।

यहाँ 'पत्रांतरे विलोक्य' से यह स्पष्ट होता है कि यह पूर्व में किसी के द्वारा लिखी गई अंकपल्लवीलिपिबद्ध एक मातृका आधार रूप से रही होगी जिस से प्रतिलिपि की गई है। अंकपल्लवी लिपि की लेखन शैली में यहाँ कई विशेषताएँ देखने को मिलती हैं।

अंक के साथ ह्रस्व इकार, अन्य गाथा में भी अंक के साथ ह्रस्व उकार, कहीं-कहीं नाम के पूर्व में श्री शब्द प्रयुक्त हुआ है। पाठ के मध्य में कहीं कहीं पेखत आदि शब्द देवनागरी में लिखे हुए मिलते हैं। लिपिकार ने प्रत्येक ख की जगह ष का ही उपयोग किया है। जैसे कि सखी में उपयुक्त शब्द 824 षी (स्त्री)। कहीं कहीं अकार के लिये 1 का प्रयोग दिखायी दिया है तो कहीं पर नहीं है मतलब 'क' अक्षर को सूचाने के लिये कहीं क वर्ग की संख्या 2, बस 'क' अक्षर की सूचना के लिये कहीं 2 का प्रयोग तो कहीं 21 का प्रयोग।

इससे पता चलता है कि, यद्यपि इस लिखन शैली के लिये कुछ निर्दिष्ट नियम रहा होगा, संख्या की सूचना देते-देते कभी-कभी प्रतिलिपिकार अक्षर लिख लेता है।

महावीर शब्द को बताने के लिये संख्या 64 ।842 ।744 ।72

पर अभी अनुध्यान करने का विषय है कि, क्या ऐसी लिखनशैली सिर्फ यही एक मातृका में मिलती है या ऐसी व्यवस्था और कहीं अपनायी गयी है। प्रमाण के रूपमें उसी ज्ञानमन्दिर में उपलब्ध एक दो मातृकाओं की पुष्पिका से कुछ पंक्तियाँ –

AKGM 96365 वीतरागस्तोत्र

अन्तिम पंक्तिद्वय –

पं श्रीमाणिक्य चंद्र गणिना लिखि। गंधार बंदिरा

652 । 55 । 632 । 14 । पठनार्थम्। सुश्री पं 74 । 71 । 33 । 632 । 14 पठनार्थम्। श्रियोस्तु। कल्यणमस्तु।

अत्र मानबाई पठनार्थम् सुश्री पं वायजबाई पठनार्थम्। श्रियोस्तु। कल्यणमस्तु।
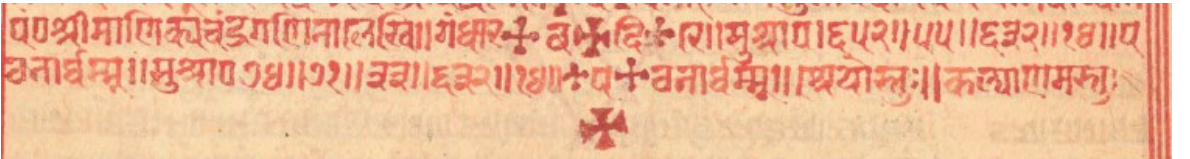
वीतरागस्तोत्र की पुष्पिका

AKGM 0113908 पार्श्वजिनस्तव

अन्तिम पंक्ति

73। 61। 55।65 81। 23 72 – ली पं ने म शा ग र
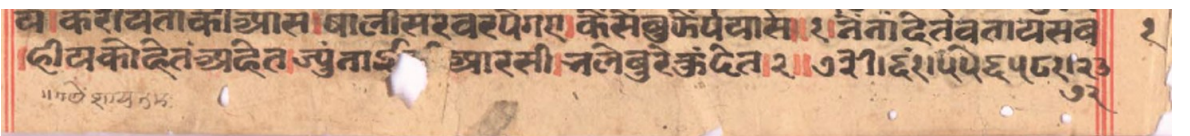
पार्श्वजिनस्तव की पुष्पिका

AKGM 0121573 श्रीपालराजा रास

चतुर्थ पंक्ति

प्रथम पर्याय - 54 । 55 । 819 ।65 । 23 ।453 । - धनशो(सो)म गणि

द्वितीय पर्याय - 21 । 55 । 21 । 819 । 65 । 23 । 453 । - कनक शो(सो)म गणि

पंचम पंक्ति – 11 । 65 । 72 ।513 ।632 ।14 – अ म र ति बाई

धनशो(सो)म गणि तत् शिष्य पंडित श्री कनक शो(सो)म गणिना लखीतं ओसवंसज्ञातीय ईबा (बाई) श्री अमरति बाई वचनार्थं ---
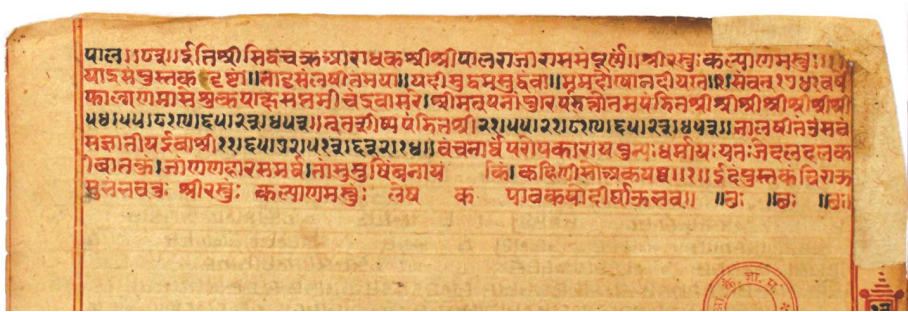
श्रीपालराजा रास की पाण्डुलिपि का अन्तिम पृष्ठ

AKGM 101169 उत्तराध्ययन सूत्र –

अन्तिम पंक्ति – 537। 532। 334। - देदाजी

विद्वानों की अवगति में आया होगा अधिकतर पाण्डुलिपियों के अन्त में कुछ अंकों की सूचना दी गयी है। पर इसका decoding सबसे सम्भव नहीं है। इसमें लिखनकार, लिखन समय, लिखने के उद्देश्य आदि के बारे में सूचना दी गयी होगी। इस पर अध्ययन करना बाकी है।
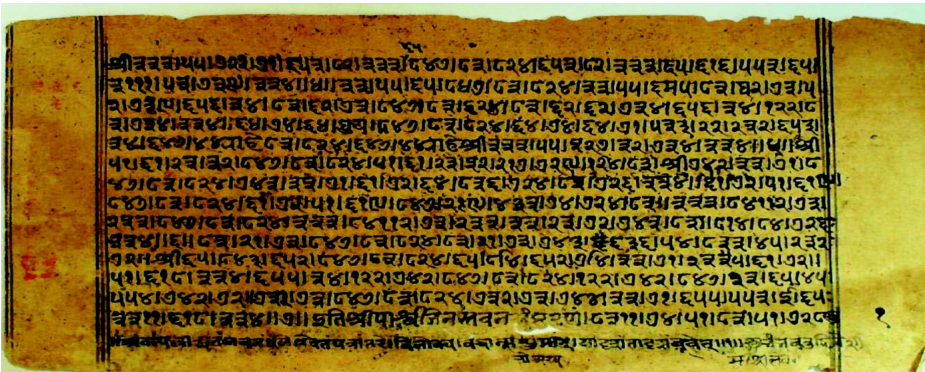
पार्श्वजिनस्तव की पाण्डुलिपि का अन्तिम पृष्ठ

कुछ उत्कलीय मातृकाओं के अन्तिम पत्र में पुष्पिकाओं में संख्या '32' की सूचना दी गयी है। 32 का अर्थ अंक पल्लवी के हिसाब से 'छ' ही है। इसकी पर्यालोचना अपेक्षित है।

***

भारतीय जनजातियों में पितर की अवधारणा

डा. कैलाश कुमार मिश्र
नृवैज्ञानिक, पूर्व शोध पदाधिकारी,
इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली.

'पितर' तथा 'पूर्वजों' के प्रति हमारी अवधारणा, श्रद्धा, श्राद्ध के विधि-विधान केवल शास्त्रीय ग्रन्थों का मुहताज नहीं है। जो लोग श्राद्ध-कर्म तथा पितर की अवधारणा को ब्राह्मण-पुरोहितवाद का ढकोसला मानते विष-वमन करते अघाते नहीं हैं उनके लिए यह आलेख आँखें खोल देने वाला है। जो भारतीय जनजातियाँ शास्त्रीय ग्रन्थों से दूर रही हैं वे भी पारम्परिक रूप से पूर्वजों के प्रति अपने-अपने ढंगे से श्रद्धा व्यक्त करती रही है। लेखक स्वयं एक जाने-माने नृविज्ञानी हैं। इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र के पूर्व शोध-पदाधिकारी रहे हैं। लेखक ने स्वयं भ्रमण कर इन तथ्यों को जुटाया है। इन जनजातीय परम्पराओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि मरणोपरान्त पितर की अवधारणा की जड़ें पहुत गहरी है। यहाँ 'पिता-पितरौ-पितरः' रटाकर केवल जीवित माता-पिता को ही पितर मानने का सिद्धान्त टिकने वाला नहीं है। अण्डमान निकोबार की जारवा जनजाति में समुद्र में जाने से पहले वे देवता मानकर पितरों की स्तुति करते हैं। गोंड आदिवासियों के डूमा देव पितर हैं, जिनके घर में केवल बहू जा सकती है, बेटी नहीं। आइए, इस लेख को पढ़ें-

भारत विविधताओं का देश है। यहाँ की पूरी जनसंख्या का लगभग 8 प्रतिशत भाग आदिवासियों का है जिन्हें आदिवासी, जनजाति, मूलजाति, वनवासी, वन्यजाति जैसे नामों से सम्बोधित किया जाता है। भारतीय संविधान में इन्हे एक अनुसूची के अंदर रखा गया है इसीलिए इन्हें अनुसूचित जनजाति भी कहा जाता है। ये लोग भारत के जंगल, पहाड़, पठार, एवं दुर्गम स्थानों में प्रकृति के साथ ताल से ताल मिलाकर अपना जीवन प्रकृति संतति के रूप में जीते हैं। इनके रहने के, खाने के, उत्सव, अनुष्ठान, लोकाचार, देवता, धार्मिक आस्था, धरती अर्थात प्रकृति के साथ एक अलग और विलक्षण तरीका है। वस्त्र, आभूषण, नृत्य, उत्सव, गीत कुछ इन्हें अलग अस्तित्व प्रदान करते हैं। मैं अपने आपको सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मुझे भारत के अनेक भू-भाग में जाकर समय-समय पर इनमें से अनेक जनजातियों से मिलने का, उनको उनके साथ रहकर समझने का, उनसे उनकी संस्कृति और संस्कारों को समझने और सीखने का अवसर मिला है। मेरी यह यात्रा आज भी गतिशील है। अगर आप मेरे साथ यात्रा करे और आदिवासी समाज में जो पितर पूजा, पितर सम्मान और उनका स्थान है यह देखकर आपको लगेगा कि भारतीय हिन्दू परम्परा के साथ वे कैसे ताल-से ताल मिलाकर चलते हैं। या फिर यह कह लें कि हिन्दूओं ने किस तरह से अनादिकाल से इनके साथ अपने को जोड़ रखा है।

आन्ध्र प्रदेश में कोंडा दौरा आदिवासी महिला संग लेखक

इस आलेख में मैं उन्हीं परम्पराओं और प्रयोग का उदाहरण देने जा रहा हूँ जिसका मैं स्वयं साक्षी रहा हूँ। एक मानव-विज्ञान का छात्र होने के नाते मुझे ऐसा लगता है कि जो बात आप अपने आँखों से देखते हैं, कान से सुनते हैं, जिस समुदाय की बात आप कर रहे हैं, उनके साथ आप रहकर लिखते हैं, और लेखन आप बिना किसी भय, लोभ के कर रहे हैं तो आप 100 प्रतिशत वैज्ञानिक और प्रामाणिक बात लिख रहे हैं। इसपर किसी और प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। आपको लगने लगेगा कि व्यवहार की कसौटी पर अधिकांश आदिवासी समुदाय अखिल भारतीय परम्परा में व्याप्त हिन्दू संस्कार को मानते हैं। हो सकता है वे लेखन की शैली से दूर हैं, लोक व्यवहार और मौखिक परंपरा के जीवंत प्रमाण हैं, लेकिन हैं मूल रूप से उसी परम्परा के पक्षधर और अनुयायी। प्राचीन भारत के राजा आदिवासी समाज को सदैव अपना हित ही समझते थे।

एक शिलालेख में सम्राट् अशोक एक आदेश देते हुए अपने अधिकारी को कहते हैं "सबसे पहले ध्यान और कल्याण का कार्य उन वनवासियों के लिए करो जो दुर्गम पहाड़, घने जंगल में रहे हैं। अपनी आवश्यकता को सीमित कर जीवन जीने की कला जानते हैं।" (तेरहवाँ दीर्घ अभिलेख) अशोक शिलालेख को पढ़ते ही सबसे पीछे वाले का विकास सबसे पहले करना है का सिद्धान्त जीवंत हों उठता है।

झारखण्ड राज्य के सिमडेगा जिले में जहाँ मुण्डा और ओरांव जनजाति के लोग रहते हैं एक झरना है जिसका नाम है **रामरेखा धाम**। लोक मान्यता है कि वनवास के समय भगवान राम अपनी पत्नी सीता और छोटे भाई लक्ष्मण के साथ यहाँ रुके थे। अभी भी पत्थरों का एक ऐसा प्राकृतिक निर्माण है जिससे विशाल चूल्हे का भान होता है। लोक मान्यता है कि झरने के पवित्र जल से सीता प्रतिदिन इसी चूल्हे पर भोजन पकाती थी। आदिवासी समाज के लोग इस मान्यता का सम्मान करते हैं और अपने आपको राम से रामायण से, हिन्दू धर्म से जोड़कर देखते हैं, बल्कि अपने आपको एक अभिन्न हिस्सा मानते हैं।

गुमला जिले के चैनपुर के समीप पहाड़ी पर अनेक शिव मूर्ति, अन्य देवी देवताओं के साथ गौतम बुद्ध की मूर्ति भी है। इस स्थान को टांगीनाथ कहा जाता है। टांगी का अर्थ कुल्हाड़ी होता है। एक जगह टांगी पड़ा हुआ था उसी के नाम पर इसका नाम टांगीनाथ पर गया। समुखी शिवलिंग की पूजा प्रतिदिन स्थानीय आदिवासी पाहन करता है। सभी आदिवासी वहाँ एकत्रित होते हैं।

गुमला जिले के घाघरा प्रखंड से नेतरहाट के रास्ते में एक स्थान है देवाकी। देवाकी का अर्थ ओरांव भाषा में देव घर होता है। यहाँ के एक नदी के किनारे गुफा और अगल-बगल में अनेक छोटे बड़े शिवलिंग हैं। ये आदिवासी इनकी पूजा करते हैं। इनको अपना परम देवता की संज्ञा देते हैं। अभी कुछ साल पहले वहाँ एक लघु किन्तु भव्य मन्दिर बना दिया गया है।

"ओ राम" कहने वाले कहलाये ओराँव

आप देवाकी से नेतरहाट के रास्ते आगे बढ़ते रहिये। 10 किलोमीटर के बाद एक प्रखंड आता है

बिशनपुर। यहाँ मैं तत्कालीन छोटानागपुर खादी ग्रामोद्योग के व्यवस्थापक महेन्द्र नारायण सिंह के साथ मिला। कुछ आदिवासी बुजुर्ग कहने लगे– "राम वनवास इसी रास्ते से गए थे। यहाँ के आदिवासियों ने उनका साथ दिया। बदले में राम भी इन्हें बहुत स्नेह करते थे। राम को ये लोग प्रेम से सदैव "ओ राम ओ राम" कहकर बुलाते। राम, सीता और लक्ष्मण इनके स्नेह से मंद-मंद मुस्काते रहते। ये लोग जंगल से उनके लिए फल, कंद, मूल आदि ले आते, उन्हें प्यार से खिलाते। चूँकि ये सदैव "ओ राम ओ राम" बोलते अतः इनको "ओ राम" के नाम से लोग बुलाने लगे। बाद में ओ राम बन गया "ओराम" और ओराम से "ओरांव"।

बीकानेर का नामकरण

बीकानेर की यात्रा कर रहा था तो पता चला कि बीकानेर का नाम राजा विक्रम सिंह जी को लोग "बीका" के नाम से बुलाते थे और नेरा जो एक भील था के नाम पर पड़ा है। मान्यता है कि एक बार बीका की स्थिति दयनीय हो गयी। उस समय उनका भील दोस्त नेरा अपनी समस्त संपत्ति दे दिया। बीका का कुछ समय के बाद समय बदल गया। अच्छे दिन आये। अब बीका ने एक शहर का निर्माण किया जिसका नामकरण अपने और नेरा के नाम को जोड़कर बीका + नेरा = बीकानेर कर दिया। उदाहारण इतने हैं कि उनको एक जगह नहीं किया जा सकता।

जगन्नाथ देव की मूर्ति बनानेवाले सबरा जनजाति

जगन्नाथ पुरी के मन्दिर में जो तीन मुख्य देवताओं की प्रतिमा — जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा है , इनका निर्माण करनेवाले मूर्तिकार सबरा जनजाति से आते हैं। सबरा भील आदिवासी का एक उपजाति है। इतना ही नहीं, ये पत्थर अथवा धातु से प्रतिमा नहीं बनाते, लकड़ी से बनाते हैं। यहाँ मूर्ति निर्माण से संबंधित विष्णुपुराण का चित्रसूत्र भी इन्हें लकड़ी का प्रयोग और मूर्ति की morphology में यथार्थ से हटकर आदिवासी संकल्पना की आजादी देते है। रथयात्रा के समय कार खिचने से पूर्व मन्दिर के गर्भ गृह में पूजा का कार्य का संपादन भी सबरा आदिवासी का पंडित करता है। देवताओं की काष्ठ की बनी प्रतिमा को बारह अथवा उन्नीस वर्ष में एक सटीक प्रतिकीर्ति से बदल दिया जाता है।

गंभीर अवलोकन का विषय यह है कि सबरा काष्ठ कलाकार मूर्ति के जनजातीय स्वरूप को उकेरने में इतना दक्ष होते हैं कि पूर्व की मूर्तियों से तिल मात्र भी अंतर नहीं करते। इस समय ऐसा लगने लगता है कि ये आदिवासी कलाकार वास्तु, दिशा और मूर्ति निर्माण की कला के सर्वोत्तम कलाकार हैं। अर्थ स्पष्ट है दोनों एक दूसरे के पूरक है, एक लोक में प्रवीण है तो दूसरा शास्त्र के साथ चलता है। दोनों ज्ञान परम्परा का आदान-प्रदान आपस में करते हैं। लोक परम्परा और लोक व्यवहार से शास्त्रीय ज्ञान एक निश्चित अनुपात में उनके पास अर्थात् जनजातियों के पास सतत जाते रहता है। लोक ज्ञान अपनी गति से शास्त्र के अधिकारियों तक पहुँच जाता है। दोनों अपने विधि, विधान, अनुष्ठान और कार्य के निष्पादन में सुविधानुसार परिवर्तन लाते रहते हैं। अर्थ स्पष्ट है, जनजातीय जीवन और हिन्दू जीवन बाइनरी ओप्पोसिशन नहीं हैं, एक दूसरे के पूरक हैं।

चित्र : लेखक के द्वारा

नागा जनजाति का एक गाँव

आदिवासी समाज में पितर को समझने के लिए उनका स्वरुप समझना आवश्यक है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए मैं कुछ मूल तत्त्व की है।

अण्डमान निकोबार की जारवा जनजाति– पितृ -स्तुति

अब चलते हैं पितर आराधना और पितर तर्पण की ओर। अधिकांश जनजातियों में पितर को देवता और भगवान के बीच मध्यस्थ माना जाता है। अण्डमान निकोबार में रहनेवाली जारवा जनजाति के लोग पितर के माध्यम से अदृश्य देवता से संवाद ऐसे करते हैं जैसे देवता उनके परिवार के सदस्य हों! वे सूर्य के समक्ष खड़े होकर मछली, केला, नारियल या वह सभी सामग्री जो स्वयं खाते हैं अथवा उपयोग में लाते हैं, अपने अपने पितरों को अर्पण करते हैं। जानवरों का रक्त, स्थानीय मदिरा भी चढ़ाते। कोई भी भोज्य पदार्थ अपने पितरों को दिए बिना नहीं करते। उनके लिए सभी दिन पितरों का दिन है। जब जारवा युवक समुद्र में मछली पकड़ने जाने लगते हैं तो समुद्र से अपने नाव पर बैठे बैठे अपने पितरों से निवेदन करते रहते हैं: *"हे पूज्य, भव्य, शक्तिशाली, दिव्य, और सर्वशक्तिमन पितृ, हे देवताओं के समकक्ष बैठने वाले, हे समुद्र, आकाश, पृथ्वी सभी जगह अदृश्य होकर सदैव विचरने वाले पितर, हे घर में, नाव में हर जगह उपस्थित रहने वाले पितर हम घर पर अपने बच्चे, दूध पिलाती एवं गर्भवती महिलाएँ, बुजुर्ग को छोड़कर समुद्र में आ गए हैं। आवश्यकता भर मछली पकड़ कर वापस चले जाएँगे। आप हमारे घर के सदस्यों को हिंसक जानवर यथा सिंह, बाघ, चीता, हाथी आदि से रक्षा करो, उन्हें बीमार न पड़ने दो"*।

इधर घर के लोग अपने पितर से निवेदन करते रहते हैं: *"हे पितर! आप सर्वशक्तिमान हैं। हमारे लोग*

नाव और जाल लेकर मछली पकड़ने गए हैं। वे आवश्यकतानुसार ही मछलियों को पकड़ेंगे। आप देख लो समुद्र उनके वापस आने तक उदंड न बने, तूफ़ान न ले आये, समुद्र के बिषैले साँप उनको डस न ले, खतरनाक जिव उनको निगल न जाए, पानी का वेग उनके नाव को डूबा न दे, इन्हे मृत्यु का सामना न करना पड़े।" पितर उनकी उनकी मान्यता के हिसाब से सुनते हैं उन्हें बचाते हैं। केरल और आंध्र प्रदेश के समुद्री क्षेत्रों में पितर अपने बच्चो को यह निर्देश देते हैं कि कब समुद्र में जाना सुरक्षित रहेगा कब नहीं। बालू के रंग को देखकर यहाँ के आदिवासी समझ लेते हैं। बालू में प्रविष्ट होकर पितर अपने लोगों की रक्षा करते हैं।

सिक्किम और दार्जिलिंग की लेपचा जनजाति

सिक्किम और दार्जिलिंग हिल्स में विशेष रूप से कंचनजंघा छोटी के समीप रहनेवाले लेपचा जनजाति के लोग अपने पितरो की पूजा सिहणीय दारू, फल, रक्त आदि से करते हैं। इनके पितर ही इनके मुख्य देवता अथवा गार्डियन डिटी हैं। इनके प्रथम गार्डियन डिटी कंचनजंघा पर्वतमाला के सर्वोत्तम चोटी पर औषधि, पुस्तक, आदि के साथ रहते हैं। अपने लोगों को देखते रहते हैं। उनकी रक्षा करते रहते हैं।

लेपचा आदिवासी वैसे तो बहुत दिनों से बौद्ध हो चुके हैं फिर भी न तो अपने देवता, न परम्परा न ही पितर को भूले हैं। उनके लिए बौद्ध एक विश्वास का धर्म है जो उनकी परम्परा, पितर, विचार और जनजातीय अनुष्ठान में कहीं भी किसी तरह की वाधा उत्पन्न नहीं करते! गृह निर्माण के समय भी ये लोग आज भी अपने पूर्वजों का आह्वान करना नहीं भूलते। और तो और ईसाई धर्म को माननेवाले लेपचा भी गार्डियन डिटी (संसार का बीजपुरुष) को मानते हैं, अपने कुल के पितर का आह्वान करते हैं और लेपचा आइडेंटिटी के साथ गर्व से अपना जीवन जीते हैं।

चित्र : लेखक के द्वारा

उदयपुर के भील जनजाति के गोतरेज, जहाँ पूर्वजों के स्मारक स्थापित हैं।

गोंड जनजाति में पितृदेव— डूमा देव

भील के बाद गोंड सबसे बड़ा जनजातीय समुदाय है। ये लोग छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, गुजरात, एवं राजस्थान तक हैं। पश्चिम बंगाल तक ये मिलते हैं। पूरा गोंडवाना लैंड इनके नाम। गोंड आदिवासियों में में पितर देव तर्पण घर से बाहर करने की प्रथा नहीं है इसका कारण है कि गोंड अपने पितर देव का अपने घर में नुकांग अड़ा में स्थापित कर हर समय पूजा करते हैं। जब भी कोई अवसर आता है तब गोंड समुदाय के लोग अपने देवताओं के साथ अपने पितरदेव का, जिसे जिसे वे डूमा देव कहते हैं की पूजा करते हैं। गोंड जनजाति समाज के किसी भी खानदान के बड़े घर में नुकांग अड़का अर्थात् चावल हांडी स्थापित होती है।

यह घर खानदान के अन्य लोगों के लिए श्रद्धा का केंद्र होता है और बहुत पवित्र होता है। यहाँउनके पितृ देव याने डूमा देव स्थापित होते हैं। इस कमरे में जहाँ डूमा देव स्थापित होते हैं, उस स्थान पर महिलाओं का जाना वर्जित होता है। बहन बेटियाँ इस कमरे में नहीं जा सकती। केवल बहुओं को जाने की इजाजत है कारण की वे खानदान के गोत्र में सम्मिलित हो चुकी हैं। इसमें भी एक शर्त है उन्हीं बहुओं को इस कमरे में

जाने की इजाजत होती है जिसका पहला बच्चा लड़का होता है। इस प्रथा और निषेध देखकर लगता है कि यह एक तरह से मुख्यधारा हिन्दू से ऐसे मेल खाता है जैसे किसी व्यक्ति की मृत्यु पर उसकी बहू ही अनुष्ठानिक कार्य के लिए भोजन पकाएगी, स्थल पवित्र करेगी, अनुष्ठान का सञ्चालन करेगी, इत्यादि।

इस तरीके से यह बहुत पवित्र स्थान होता है। खानदान के लोग अपने पितृदेव को अपना रक्षक देव मानते हैं और जब भी उन्हें किसी भी प्रकार का कष्ट होता है, तो वह सबसे पहले अपने डूमा देव के शरण में आते हैं और आस्था और विश्वास कहिए उनका कष्ट का निवारण होता है। नुकांग अड़का या चावल हांडी में पितृदेव को मृत्यु संस्कार के बड़े काम के दिन सम्मिलित किया जाता है। जनजाति समाज में विषम गोत्री रिश्तेदार जिन्हें अक्कू मामा कहते हैं का बहुत महत्व होता है।

इन्हीं लोगों के द्वारा मृतक परिवार की शुद्धिकरण की जाती है और उसी दिन मृत्यु स्तम्भ बनाया जाता है। मृत्यु स्तंभ बनाने के बाद सब नहाने के लिए जाते हैं। आपको मामा परिवार मृतक परिवार को चुन माटी मुलतानी माटी देकर नहाने को कहता है और वह शुद्ध होते हैं। इसके बाद मृत्यु स्तंभ के पास अक्कू मामा परिवार भोजन बनाता है और मृतक को भोग लगाते हैं बचे हुए चावल को एक नए हड्डी में डालकर फिर से नहाने के घाट जाते हैं। वहाँ एक मछली पकड़ कर हड्डी में रखकर पुजारी माटी गांयता उसे लेकर मृतक परिवार के घर आते हैं। जहाँ उसे पूरे अनुष्ठान के साथ चावल हांडी में स्थापित कर पितृदेव बनाया जाता है।

मृतक आत्मा का चावल हांडी में प्रवेश हुआ या नहीं इसका विधिवत परीक्षण किया जाता है। एक चूजे को चावल टोकाया जाता है यदि चूजे ने चावल खा लिया तो समझा जाता है की आत्मा पितृदेव के रूप में घर में प्रवेश कर चुकी है। उसके बाद उनकी विधिवत पूजा कर शराब तर्पण किया जाता है। इसी तरीके से एक गाँव में एक गोत्र के लोग निवासरत होते हैं उन सबके परिवार में जितने लोग भी मृत होते हैं। उन लोगों की आत्मा को गाँव में ही एक जगह स्थापित की जाती है इसे आना कुड़मा कहते हैं।

देव मन्दिर से भी छोटी संरचना होती है और यहाँपूरे गाँव के एक गोत्र के लोगों का आत्मा को स्थापित किया जाता है। ऐसा करने के पीछे जनजाति समाज की सोच है कि मृतक आत्माएँ एक साथ रहेंगे तो उनका प्रभाव ज्यादा होगा और गाँव में आने वाली बुरी शक्तियों को वे नष्ट करेंगे। इस प्रकार जनजाति समाज अपने पितर देव को विसर्जित नहीं करता बल्कि वे उसे ससम्मान अपने घर में स्थापित करते हैं और जब भी देव उत्सव का पूजा होता है। उनकी विधिवत पूजा की जाती है और उन्हें बलि एवं तर्पण दी जाती है जनजाति समाज के पितृदेव उनके रक्षक देव होते हैं जो हर समय उनकी सहायता करते हैं।

संताल जनजाति में अंत्येष्टि

संताल जनजाति के लोग मृतक को जलाते और दफनाते भी हैं। अगर कोई संथाल मृत शरीर को दफनाता भी है तो उसके मुख में अग्नि जरुर देता है। इसी समय मृत शरीर से सिर के थोड़े से केश तथा अंगुलियों के नाखून काटकर रख लिये जाते हैं तथा दफनाने की क्रिया समाप्त होने पर केश तथा नाखून को नदी नाले में प्रवाहित कर दिया जाता है। संतालों में शरीर को जलाया या दफनाया जाय लेकिन इसके बाद समस्त मृत्यु संस्कार सम्बन्धी क्रियाओं को करना अनिवार्य है। अगर बालक या बालिका का "चाचो छठियार" सम्पन्न हो गया है और दुर्भाग्यवश उसकी अकाल मृत्यु हो जाती है तो उसे पैतृक जमीन पर दफनाया अनिवार्य है। जबकि छठियार सम्पन्न नहीं हुए बालक को पैतृक जमीन पर नहीं दफनाया जाता है।

संताल समुदाय महामारी संक्रामक रोगों से पीड़ित मृत व्यक्तियों के मुख में अग्नि नहीं देते हैं। उनका ऐसा मानना है कि अग्नि देने से महामारी या संक्रामक रोग सम्पूर्ण गाँव में अग्नि की प्रचण्ड पलटों के समान ही फैल जायेगी तथा गाँव की सारी आबादी भी इन रोगों के चपेट में आ जायेगी। अत: ऐसे मृत शरीर को अधिकतक दफनाते ही हैं और जलाते हैं तो मुख में अग्नि कभी नहीं देते हैं।

संताल समुदाय मृत्यु संस्कार पर पोचोय (मदिरा) दिल खोलकर सेवन करता है।

गाँव का गोड़ैत गाँव के लोगों को खबर देता है कि मृत शरीर को जलाने या दफनाने ले जाना है अत: सभी लोग शीघ्र एकत्रित हो। इधर शोकित परिवार की महिलायें मृत शरीर को नहला देती है, सूखे कपड़े से मृत शरीर को पोछकर चेहरे तथा पैर पर तेल लगाती है। उसके पश्चात् मृत शरीर को कफन से ढ़क दिया जाता है और पुरुष सदस्य मृत सदस्य मृत शरीर को चारपाई या अर्थी पर लेकर निश्चित स्थान की ओर प्रस्थान करते हैं। अगर मृत शरीर को जलाना है तो लकड़ी का "सारा" बनाया जाता है। अगर पिता का मृत शरीर है तो उसका पुत्र उसके मुख में सूखे घास को जलाकर आग देता है, तपश्चात् सम्पूर्ण "सारा" को अग्नि देता है। (अगर मृत्यु शरीर को दफनाना है तो भी कब्र के चारों तरफ तीन या पांच बार घुमाया जाता है उसके पश्चात् कब्र में रखकर मुख में अग्नि दी जाती है) मृत शरीर के जले हुए अवशेष से पुत्र एक हड्डी को चुनकर अपने मुट्ठी में बन्द कर लेता है, उसके बाद स्नान करके घर की ओर प्रस्थान किया जाता है। इन सभी व्यक्तियों को घर के दरवाजे के बाहर ही हाथ-पैर धोना पड़ता है, फिर वे घर में प्रवेश करते हैं और मदिरा का सेवन करते हैं। पुत्र मुट्ठी में बन्द हड्डी को प्रेमपूर्वक एक मिट्टी के बर्तन में रख देता है जिसे "जाड़ा वाहा" कहते हैं।

इसी दौरान शोकाकुल परिवार की महिलायें घर की लिपाई-पुताई गोबर से करती है और अपवित्र समझे जाने बर्तनों को घर से बाहर फेंक देती है। उसके पश्चात् वे नदी नाले में स्नान करने चली जाती हैं। जैसे-जैसे यह दुखित सन्देश रिश्तेदारों तथा कुटुम्ब के लोगों को मिलता है वैसे-वैसे एक सप्ताह तक वह शोकित परिवार को सान्तवना देने पहुंचते रहते हैं।

मृत्यु के नवें दिन पर "आन्ना" किया जाता है। "जाड़ा-वाहा" (अवशेष हड्डी जो मिट्टी के छोटे बर्तन में रखी है) को गाँव की सीमा के बाहर पुत्र ले जाता है तथा "जाड़ा वाहा" को एक केन्द्र के लकड़ी के दीया (लैम्प) पर रख देता है। उसके पश्चात् पुत्र हड्डी को मुट्ठी में बांध लेता है और उपस्थित सभी पुरुष-स्त्री पत्ते के दोने से जल मुट्ठी पर बारी-बारी गिराते हैं और अन्त में पुत्र बायें हाथ से एक केन्द्र के लकड़ी से दीया तथा बर्तन को फोड़ देता है। पश्चात् वे सभी नदी की ओर प्रस्थान करते हैं। महिलायें स्नान के पश्चात् अपने-अपने घर वापस लौट आती हैं। पुरुष सदस्य नदी के तट पर ही बालु में वेदी बनाते हैं। मृत व्यक्ति के नाम अरवा चावल, दूध, मिठाई आदि चढ़ाया जाता है उसके पश्चात् पुत्र "जाड़ा वाहा" को नदी के जल में प्रवाहित कर देता है। तत्पश्चात् स्नान करके सभी लौट आते हैं। घर के दरवाजे पर ही अपने पत्नी या अपनी बहन द्वारा पुत्र का पैर धोया जाता है, भगवा कपडे भी बदल लेता है। पुन: घर के आंगन में बेदी बनाकर पूजा की जाती है तथा मृत व्यक्ति को एक मुर्गी अप्रित की जाती है, जिसे ओडाक कहते है। इस क्रिया के पश्चात् पोचोय (मदिरा) की भी पूजा की जाती है और सपरिवार सेवन किया जाता है।

अब उस मृत व्यक्ति का "भांडान" किया जाता है तथा इसकी पूर्व सूचना सारे रिश्तेदारों, कुटुम्ब को चार -पांच दिन पहले ही भिजवा दी जाती है, जिससे सभी सम्मिलित हो सके। गाँव के परिवारों को भी सूचना दी

छत्तीसगढ़ के गोण्ड आदिवासी अपने पूर्वज की पूजा करते हुए

जाती है। इस दिन घर की लिपाई-पुताई की जाती है तथा स्नान के पश्चात् भांडान में उपस्थित सभी व्यक्तियों को चूड़ा (मूढी) जलपान के रुप में दिया जाता है।

बीच आंगन में मांडोली (पूजा-स्थल) बनाकर मृत व्यक्ति के नाम से पूजा की जाती है, जिसमें धनी परिवार मृत के नाम पर बैल की बली चढ़ाता है, आर्थिक स्थिति कमजोर होने पर सूअर-बकरी की बलि भी चढ़ा सकता है। उपस्थित रिश्तेदार तथा गाँव के लोग भी अपनी हैसियत तथा इच्छानुसार मृत के नाम सूअर, बकरी, मुर्गी इत्यादि बलि चढ़ाते हैं। इस दिन मृत व्यक्ति का परिवार "भोज-भात" की व्यवस्था करता है। उपस्थित सभी व्यक्तियों को खिलाया-पिलाया जाता है। बलि किये हुए मांस में से कुछ मांस को गाँव के गली में पकाया जाता है तथा यह मांस सिर्फ पुरुषों द्वारा ही गली में ही खाया जाता है, लेकिन भांडान करने वाले परिवार के पुरुष सदस्य नहीं खाते हैं। संताल समुदाय का विश्वास है कि ऐसा करने से मृत व्यक्ति का अब घर से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। इस प्रकार मृत व्यक्ति का "भांडान" सम्पन्न होता है।

इन सब क्रियाओं के दौरान ही कभी-कभी वहाँ उपस्थित पुरुष सदस्यों में से एक या दो झूमने लगते हैं। संतालों का विश्वास है कि इनके अन्दर मृत व्यक्ति की आत्मा प्रवेश करती है। इन दोनों व्यक्तियों के सामने नया सूप तथा चावल रखा जाता है। मृत व्यक्ति के रुप में झूमने वाला व्यक्ति परिवार के सभी सदस्यों से पानी मांगता है। उसके पश्चात् वह परिवार के भविष्य के बारे में बतलाता है, सुख-दुख, विपत्तियाँ

बतलाता है।

"भांडान" में खिलाना-पिलाना अर्थात भोज भात छः महीने या एक साल बाद भी हो सकता है। यह भांडान करने वाले परिवार के आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है।

मेवाड़ की भील जनजाति के गोतरेज

मेवाड़ के उदयपुर के अगल बगल के भील जनजातियों के साथ कार्य कर रहा था। भील भगवान शिव के भक्त हैं। उनकी पूजा अर्चना करते हैं। और तो और लगभग 30 किलोमीटर की पहाड़ी के चारो तरफ उन्होंने लघु अथवा मिनिएचर भारत का निर्माण लोककथा और शिवलिंग के माध्यम से कर लिया है। इस पहाड़ी को स्थानीय भाषा में इन्या पहाड़ी कहते हैं। पहाड़ी के बारह स्थान पर बारह लघु द्वादश लिंग की स्थापना है। भील आदिवासी देवता के स्थान को देवड़ा कहते हैं। एक देवड़ा पर गया। भील पुजारी जिसको वे भोपा कहते हैं ने मुझे बताया कि देवड़ा के अगल बगल में भीलों के पूर्वज का स्थान है। उस स्थान को वे लोग गोतरेज कहते हैं। गोतरेज अर्थात गोत्र के पूर्वज। वहाँ जब गया तो देखा कि अनेक जगह जहाँ मृतकों को जलाया गया है वहाँ कुछ अलग तरह की मूर्ति बने हुए हैं। उदाहरण के लिए एक महिला गर्भ से थी ऐसा बनाया गया था। एक पुरुष ट्रक चलाता हुआ बनाया गया था।

हमने पूछा: "इस तरह की मूर्तियों को उकेरने के पीछे क्या कारण हैं?"

भोपा कहने लगा:"यह एक ऐसी महिला पूर्वज की छवि है जो गर्भ से थी और बच्चे के जन्म के समय प्रसव पीड़ा से खत्म हो गई। बाद में वह उग्र भूत बन गई। परिवार और कुल के लोगों को परेशान करने लगी। अन्त में भोपा ने बताया कि उसकी पूजा करो,उसको प्रसन्न करो, वहाँ पर बकरे को बलि दो और उसका मूर्ति बना कर गोतरेज में स्थापित करो।" परिवार के लोगों ने यही किया। तबसे सब कुछ कुशल मंगल है।"

देवड़ा कहता रहा: "हमारे यहाँ पितर देवता से कम नहीं हैं। हम उनकी निमित पूजा, आराधना और अनुष्ठान करते हैं। पितर प्रसन्न रहेंगे तो अब कुछ सही रहेगा। ये जो ट्रैक ड्राइवर वाला मूर्ति देखते हैं वह भी एक भील पितर है। ट्रक चलाता था। बहुत दिन तक घर नहीं आया। जब एक साल हो गए तो परिवार के लोग भोपा के पास आए। भोपा ने बताया कि किसी दुर्घटना में ट्रक चलाते हुए वह मारा गया। उसकी आत्मा की शान्ति के लिए अनुष्ठान किया गया। फिर ट्रक चलाते हुए मूर्ति भी बनाकर स्थापित किया गया। अब वह गुणकारी पितर है और अपने परिवार और गाँव के लोगों की भलाई और रक्षा करता है। "

और भी अनेक मूर्ति थे जिसपर अलग से कभी लिखूँगा।

पितृपक्ष में सांझा भित्त-चित्र

वहाँ से आगे हमलोग मेवाड़ की हल्दी घाटी गये। पितृपक्ष का समय था। वहाँ की महिलाएँ खासकर कुँवारी लड़कियाँ और वैसी लड़कियाँ जो इसी वर्ष बियाही गई हैं, सांझा नमक लोकभित्ति चित्र का निर्माण घरों के बाहरी दीवार पर दक्षिण दिशा में करती हैं। चित्र बनाने की परम्परा में मुख्य वस्तु गाय का गोबर है। प्रतिदिन लड़कियाँ सुबह में उठकर गाय के गोबर फूल पत्ती, रंगीन कागज, आदि एकत्रित कर लेती हैं और शाम को एक वर्गाकार स्थान का निर्माण करती हैं। ऊपरी छोर पर चाँद-सितारे तो नित्य ही बनाती हैं । चयनित स्थान को सर्वप्रथम गीली मिट्टी और गोबर से पोतकर कैनवास का स्वरूप दे दिया जाता है। लड़कियों को इस क्रिया में अनुभवी और बुजुर्ग महिलाओं का भी भरपूर सहयोग मिलता है। फूल पत्ती के साथ साथ ज्वार, बाजरे की बाली, कौड़ी, फॉइल, बांस , इत्यादि का प्रयोग होता है। लाल माटी का प्रयोग

गेरुआ रंग के लिए होता है। हल्दीघाटी में लोग निम्नलिखित फूलो की पंखुड़ी का प्रयोग करते हैं:

गुल तिवाड़ी, गेंदा लाल, चमेली, बारहमासा अथवा सदा सुहागन ।

स्पष्ट करता चलूँ कि गुलाबी, सफेद, बुलाबी ब्राउन, रंगों का प्रयोग उनके स्थानीय सौंदर्य के परिचायक हैं। अच्छा हागर नमक पौधे के बीज को पीसकर आकृतियों के आंख आदि बनाने का कार्य किया जाता है।

प्रथम आकृति ज्यामितीय स्वरूप में त्रिकोण की तरह है जो एक मानवी का प्रतीक है। इस मानवी स्वरूप का निर्माण गाय के गोबर से ही किया जाता है। इसको सायं काल निर्धारित कैनवास के ऊपरी हिस्से के बाएँ दिशा में बनाया जाता है।

बीच में कुछ गोबर का 'थम्ह' (स्तम्भ) बना दिया जाता है। सूरज, चाँद-सितारे प्रतिदिन बनाए जाते हैं। अब प्रतिदिन सुबह में उन बिम्बों को मिटा दिया जाता है। सूरज, चाँद, सितारे और त्रिकोण के रूप में सांझा को रहने दिया जाता है। एक कौए को भी बिम्ब के रूप में बनया जाता है। प्रति दिन कुछ न कुछ बनाया जाता है। उदाहरण के लिए पहले दिन एकम अर्थात एक फूल या कुछ इसी तरह का बिंब बना दिया जाता है। दूसरे दिन पगल्या अर्थात दो पैर का बिम्ब तैयार करते हैं। तीसरे दिन तीन तिवाड़ी अर्थात तीन खिड़की बनाया जाता है। ऐसे बिंब और मोटिफ का चयन किया जाता है जो तिथि के साथ मेल खाता हो। षष्ठी के दिन छाबरी बनाते हैं। तो नवमी के दिन नौ मात्रिका। कहीं कहीं पर कैनवास (गोहाली) आयताकार, गोलाकार, त्रिभुजाकार भी होते हैं। इस तरह से लड़कियाँ तिथि के अनुसार विभिन्न आकृतियों का निर्माण करते रहती हैं जिनमे प्रमुख हैं:

बांदरवाल, बीजना (हाथ के पंखे), तीन तिबाड़ी, चौपड़, पाँच कुँवारे, फूल छड़ी, सातिया, आठ पंखुरी के फूल या अष्टकोणी बजोट, दस पकवान, जनेऊ, सीढ़ी, हल, दंताली, घेवर, छावरी, दीपक, खजूर, इकतारा, सत ऋषि, डोकरा डोकरी, मीराबाई, नगाड़े की जोड़, बादशाह की सवारी, आदि।

सांझा पितृपक्ष में ही क्यों मनाया जाता है इसके बारे में एक मान्यता यह है कि इस क्षेत्र में एक महिला थी जिसका नाम सांझा था। वह बहुत खूबसूरत थी। उसके माता पिता का निधन बचपन में हो गया। उसकी शादी एक लँगड़े ब्राह्मण से कर दिया गया। ब्राह्मण उसे बहुत तंग करता था। सांझा की सौत भी थी जो भी उसे परेशान करती थी। सभी मिलकर सांझा को परेशान करते । अन्त में सांझा दुख झेलते हुए मर जाती है। सांझा को नव मात्रिका लेने आती है। सांझा को स्वर्ग मिलता है। उसको मात्रिका का स्थान भी मिलता है। खोरिया ब्राह्मण को उसके पाप की सजा मिलती है।

अब सांझा स्वर्ग से देवी बनकर अपनी धरती की लड़कियों का कल्याण करती हैं। देखती हैं उनके समान किसी का शोषण तो नही हो रहा है।

साँझा का विधान बहुत लम्बा चौड़ा है। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि लोक पुरुष और छद्म ब्राह्मण दोनों का त्याग कर एक अलग और स्वतंत्र विधा स्वीकार कर रहा है। सनातन साश्वत है। परम्परा पर लोक अपना अलग मुहर लगा दिया है। नारी ने स्वाधिकार ले लिया है। पितर अभी भी पूजित हैं, तनिक विधान बदल चूका है। यह जो स्पेस है वह आपको हिन्दू धर्म में ही मिलेगा।

दुसाध जाति के लोगों ने भी कभी स्वयम पुरोहित का कार्य करना शुरू कर दिया था। इसका विरोध न तो हिन्दू धर्म ने किया न ही ब्राह्मणों ने। दुसाध फिर भी सनातन समाज के अभिन्न अंग बने रहे।

पितरों के लिए लटकाए गये घड़े

नागा जनजाति में पितर की अवधारणा

नागा जनजाति के लोग अपने बुजुर्गों को और पितरों का बहुत सम्मान करते हैं। उनको अपने गाँव की सीमा में रखते हैं। उनको देवता की तरह पूजते हैं। दुर्भाग्य से अधिकांश नागा ईसाई धर्ममावलम्बी हो गए हैं। उन्होंने नागा जाति को ने कुचला, उनकी काष्ठ कला, उनके युवक, उनकी संस्कृति को ख़त्म करने का प्रयास किया गया। डर और लोभ से नागा को ईसाई बना दिया गया। ईसाई में भी कैथोलिक ईसाई नहीं बनाया गया क्योंकि उन्हें डर था कि जैसे कैथोलिक ईसाई भगवान ईसा मसीह के साथ-साथ उनके माता पिता, कुछ एंजेल, एवं सन्तों की मूर्तियों की भी पूजा कर सकते हैं। ठीक इसी तरह से ईसाई होते हुए भी नागा अपने पूर्वजों एवं अनेक देवताओं की पूजा अर्चना करते रहेंगे। नागा लोगों को भूत-प्रेत आदि में बड़ी श्रद्धा होती है, तथा समय-समय पर ये लोग उनकी पूजा आदि भी करते हैं। जिस समय ये लोग कोई युद्ध आदि जीत कर आते हैं, तो मदिरा-पान कर के प्रेत पूजा करते हैं, तथा खूब नाचते गाते हैं। मृत्यु आदि संस्कार करने के लिये भी इन में बड़ी अनोखी रीतियाँ प्रचलित हैं। नागा लोगों में एक जाति ऐसी भी होती है, जो अपने मृतक हितैषियों के शव के साथ दो भाले रख देती हैं। इनका विचार है, कि इनकी सहायता से स्वर्ग तक पहुँचने के लिये मार्ग में उसके सामने कोई विघ्न-बाधा उपस्थित नहीं हो पाती।

नागा समाज के लोग आज भी अपने बुजुर्गों का बहुत सम्मान करते हैं। उनके सभी निर्णय बुजुर्ग ही लेते हैं। बुजुर्ग महिला और पुरुष दोनों का सम्मान नागा समाज में है।

आज से करीब सौ साल पूर्व नागा समाज में कहीं कहीं दो युवक एक नागा सुन्दरी का हाथ पत्नी के रूप में प्राप्त करने के लिए आपस में लड़ते थे। दोनों में से जो बलिष्ठ होता वह दूसरे का सिर तीक्ष्ण हथियार से काट देता। सिर का धड़ से अलग होते ही वह व्यक्ति अर्थात् मृतक पितर बन जाता। उसके सिर को सम्मान से लाया जाता। एक वीर पितर के रूप में लड़कियाँ उस सिर की पूजा करती। फिर धड़ के साथ उनका संस्कार किया जाता। उनका सम्मान पितर की तरह होता था।

अन्त में एक उदाहरण देना चाहता हूँ। जब अंग्रेज गिरमिटिया मजदूर विभिन्न देशों में भेजने लगे तो ब्रह्मपुत्र नदी के एक कछेर से कुछ युवकों को बड़े बड़े नाव में बैठाकर कोलकाता ले गए। गाँव वालों को यह आश्वासन दे गए कि 15 दिन में वापस भेज देंगे। गाँव वाले 15 दिन तक प्रतीक्षा करते रहे. वे नहीं आये। कहाँ आते भला! वे लोग तो दुसरे देश भेज दिए गए थे। गाँव वाले और उनके सम्बन्धी अब हरेक पन्द्रह दिन पर उन्हें इस आशा से देखने आते कि शायद वे आ जाएँ। वे आज तक नहीं आये। फिर उनको हरेक साल उस तिथि से 7 दिन के लिए एकत्रित होकर ब्रह्मपुत्र नदी के लहरों में प्रतीक्षा करते। अब भी हरेक बारह साल पर वहाँ एक शोक मेला लगता है . लोग अपने खोये पूर्वजों का आज भी प्रतीक्षा करते हैं।

आदिवासी समाज सही अर्थ में हिन्दू मुख्यधारा का अभिन्न अंग रहा है। यह परम्परा आज भी शाश्वत है। इसपर गम्भीर कार्य करने की आवश्यकता है।

***

पूर्वजों की पूजा और प्रतिष्ठा चिह्न

डा. श्रीकृष्ण "जुगनू"
लगभग 200 ग्रन्थों के अनुवादक एवं सम्पादक, विश्वाधारम्, 40 राजश्रीकॉलोनी, विनायकनगर, उदयपुर 313001 (राजस्थान), राजस्थान, मेल : skjugnu@gmail.com

मनुस्मृति स्पष्ट शब्दों में श्रुति, स्मृति, सदाचार और सदाचार के अविरुद्ध आत्मप्रिय- इन चारों को धर्म का लक्षण बतलाया है। यहाँ सदाचार लोकाचार है, जिसे लोक निर्धारित करती है। अविच्छिन्न रूप से चलती आ रही लोक-परम्पराएँ हमारे कर्तव्यों को निर्धारित करती हैं। इससे पूर्व आलेख में हम भारतीय जनजातियों की पितर सम्बन्धी अवधारणा की लोक-परम्पराओं का अवलोकन कर चुके हैं। यहाँ राजस्थान के क्षेत्र की सार्वजनीन लोक-परम्परा का प्रलेखन किया गया है। यहाँ न केवल भील जनजाति में अपितु सबमें 'पाहन' गाड़ने की परम्परा है। पितृपक्ष में सांझा भित्ति-चित्र बनाकर पूर्वजों की स्मृति में आरती उतारी जाती है। वीरता के साथ मृत पूर्वज की स्मृति में पाहन गाड़ते हैं। इनके अतिरिक्त खेतला, पालिया, तालिया, मालिया, मसानिया आदि पूर्वजों के स्मृति-चिह्न हैं, जिनका प्रलेखन यहाँ चित्रों के साथ किया गया है। लेखक उसी क्षेत्र के जाने माने विद्वान् हैं इन्होंने इन पाहनों पर लगे अनेक शिलालेखों का वाचन भी किया है। अतः यह आलेख प्राथमिक स्रोत है, जो लेखक का प्रत्यक्ष भोगा हुआ यथार्थ है।

परिवार के दिवंगत पितर (पूर्वजों) होकर पाषाणमय हो जाते हैं। विशेषकर वे जिनकी प्राकृतिक तरीके से मृत्यु न हुई हो, उनकी स्मृति को पाषाण की लेखा या रेखा ही बचा सकती है। और, यह मान्यता मानव समुदाय के साथ उस काल से जुड़ी है जबकि वह यादों को सहेजने का ज्ञान समझने लगा था। इसी दौर में वह स्वाद के लिए पेड़, कृषि और उसके उत्पादों को चिन्हित करने लगा था। पितरों को महत्व देना पारिवारिक संबंधों को प्रगाढ़ बनाना और उनको चिरायु रखने का भाव है, यह पूरी दुनिया में है और यही बाद में जनजातीय विशेषता भी समझी गई। और, उन्हीं से अन्य समुदायों ने भी स्वीकार किया। *(-कला की काल कथा : श्रीकृष्ण "जुगनू", पश्चिम भारत की यात्रा : कर्नल जेम्स टॉड)*

यों तो पाहन या पत्थर से बने होने से ये चिह्न पाहनिया या पाल्या या पालिया कहे जाते हैं। जहाँ पर स्थापित होते हैं, उनके आधार पर भी इनके नाम होते हैं। प्रायः खेत और खेत की पाली, तालाब, महल, मार्ग स्थान और श्मशान पर स्थापित होते है। इसी कारण इनके नाम भी होते हैं। यथा :

1. **खेत पर लगे पितृ, देवचिह्न : खेतला**
2. **पाल या पाली पर लगे : पालिया**
3. **ताल पर लगे हुए : तालिया**
4. **महलों पर लगे : मालिया**
5. **श्मशान पर लगे हुए : मसानिया।**

पूर्वजों की स्मृति में बने पाहन

ये है न स्मृतियों की स्मृतियाँ। पूजा के अनेक तौर तरीके हैं, जैसा घर और समुदाय, वैसा ही उसका पितर, पूर्वज। कार्तिक पूनम और उससे पहले चतुर्दशी को पितरों के नाम जागरण होते हैं। पालियों को स्नान करवाया जाता है, घी का लेपन किया जाता है। इससे पाषाण घिया होता है और घिया होकर दिया !

पराक्रम प्रदर्शक पाषाण प्रतिमाएँ :

संसार भर में स्मृतियों को स्थायी रूप से सहेजने के लिए पाषाण का प्रयोग बहुत पुराने काल से होता आया है। जनजातियों से लेकर अभिजनों तक की स्मृतियों को शिलाओं ने स्मारक रूप दिया है। वीरों के दान वचन, पूजन, आखेट, मोर्चा लेने, प्रयाण से लेकर प्राणोत्सर्ग तक के प्रसंगों को शिलाओं ने अपने अंक में अमिट किया है। ये सब कार्य मूलत: पराक्रम के ही पर्याय होते हैं। विश्व भर में ऐसे शौर्य स्मारक मिलते हैं। कहीं पालिए, कहीं पुतली तो कहीं वीरगल कहे जाते हैं।

दक्षिण में वीरगल बहुत कलात्मक बने। बहुत बने और अनेक रूप वाले बने। हमारे इधर और उधर की मध्य कालीन प्रशस्तियों में वीर के प्राणांत होने पर लिखा जाता है कि शूरवीर सूर्य मंडल को भेदता हुआ स्वर्ग को चला गया। शुक्रनीति, राज प्रशस्ति, अमर काव्य, जय प्रशस्ति आदि में ऐसी पंक्तियाँ अनेक बार आती हैं :

छत्र चामर संयुक्तं राज्यचिह्नैरलंकृतम्।
भेदित्वा सूर्यमण्डलं जगामस्त्रिदशालयम्।
और,
श्रीचित्रकूटे प्रबभूव युद्धं
यस्मन्दिने भूरि जगतप्रसिद्धम्।
तस्मिन्दिने वीरवरान्विभिद्य
बिम्बं रवेर्भाति दिवं प्रपद्य॥

(अमरकाव्य 15, 89)

दिवंगत होना यानी स्वर्ग प्रयाण करना। विष्णु धर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्र में कर्नाटक के ऐसे सैनिकों के प्रति सम्मान दिया गया है। (चित्रसूत्र : चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी)

वीरगल या नायक पाषाण के लक्षण :

शौर्यशिला अथवा वीरगल के निर्माण में प्राय:

पितर की स्मृति में अभिलेखयुक्त वीरगल

निम्न बातों का ध्यान रखा जाता था :

1. उस वीर ने कहाँ और कैसी वीरता दिखाई? किस रूप में लड़ा? किस शास्त्र से लड़ा? किसको साथ लेकर लड़ा? अश्व सवार था या गज सवार? यदि राजा था तो राज चिह्न, पताका जरूर होगी।
2. दिवंगत होते ही उसका स्वागत चामर धारिणी दिव्य अप्सराएं, देवांगनाएं, अमर योषिताएँ करती हैं। वे अनुरंजन करती हैं और अमोद प्रमोद का परिवेश रचती हैं।
3. दिवंगत योद्धा शिव का सदैव सान्निध्य प्राप्त करता है, पूजा का लाभ लेता है, गण का पद या स्थान प्राप्त करता है और अक्षय काल तक वहाँ विद्यमान रहता है।
4. सूर्य और चंद्रमा के विद्यमान रहने तक यह स्थिति बनी रहती है।
5. वीरगल पर कभी कभी स्वस्ति वचन, संवत् के साथ वीर के पराक्रम और स्वर्गोपम कार्यों का साक्ष्य भी अंकित किया जाता है।

(संदर्भ : एकलिंगपुराण और कला की काल कथा : श्रीकृष्ण "जुगनू")

शिवलिंग सहित वीरगल

इसके अलावा भी वीरगल के रूप होते हैं। मेरे देखने में लगभग चार सौ प्रकार आए हैं जो देश, काल और परिस्थितियों की देन भी होते हैं। इनका मूल प्रयोजन शूरवीरता, सेवा, सत्कार्य, रक्षा, सहयोग जैसे मानवीय मूल्यों के प्रति सामाजिक सम्मान की स्थापना और उसकी अपेक्षा है। इनका एक रूप बिल्कुल व्यक्तिगत भी होता है और केवल कुल या वंशवाले पूजा करते हैं लेकिन शासक के स्मारक सामाजिक सम्मान के सूचक होते हैं।

गले में झूलते हैं पूर्वज और लोकदेवता :

लोकांचल में अपने पूर्वज की पूजा कदाचित सबसे पहले चली क्योंकि उनके प्रतीक पाहन से बने मिलते हैं और कहीं कहीं लकड़ी के भी। पाहन वाले पाहनिया और पालिया कहे जाते हैं और काष्ठ वाले लाकड़िया! यह उस दौर की बात होगी जबकि धातु का प्रयोग शुरू नहीं हुआ होगा। धातु के चलन के बाद ये

पितृपक्ष में सजे-धजे पाहन, पितरों को गौरव की दृष्टि से निहारती संततियाँ

प्रतीक तांबा या चांदी और सामर्थ्य होने पर सोने के भी बनाए गए। जो इनको धारण करता है सम्मान और श्रद्धा का पात्र होता है। पुरुष क्या, स्त्रियाँ भी धारण करती हैं। मौके के अनुसार ही इनकी महत्ता है। अनेक परिवार इनसे ही अपनी समृद्धि बताते थे किसी के सामने! कहावत यह भी रही : देवरे में दिखावे पण खाली हाथ मुंडे नी जावे। कई नी तो मांदलियो गिरवी मेले ने काज करावे! यानी कि यह जमा पूंजी भी है।

यह सम्मान का सूचक है। यह औरतों और पुरुषों के गले का ऐसा गहना है जिसका आत्मिक संबंध सात्विक भाव और देव उपासना से रहा है। भोपा और भोपिन, कोटवाल और हजूरिया जैसे जो भी लोग देवरे के बावजी की सेवा चाकरी, भाव भभूति और पंखा पवन से जुड़े होते हैं, यह मादलिया धारण करते हैं। भारतीय सभ्यताओं के उत्खनन में ऐसे ताबीज मिले हैं यानी यह प्रथा स्थानीय है। यह आभूषण से कम नहीं, कला और कारीगरी दोनों ही दृष्टि से। इसके पर्याय हैं :

- **फूल, फूला और फूलडिया**
- **मादलिया और मामादलिया,**
- **नांवा, देवनामा और दर्शन**
- **पूतली या फूतली और रूपागल।**

- **चौकी या चौकियाँ**

अमूमन चांदी के बनते हैं। ये मुद्रिका जैसे होने से मुद्रा, सिक्का, मुहर जैसे आकार वाले और रचना में चौकोर, पंचकोण, छः कोण होते हैं या फिर वृत्ताकार, तांबूल पत्र जैसे भी बनाए जाते हैं। जैसा देवरूप, वैसा ही उस पर उभार वाला अंकन! श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुसार सवा दो, सवा पांच, सवा सात, सवा नौ और सवा ग्यारह तोला चांदी का प्रयोग होता है। हर अंग के अपने नाम : पड़ा, पड़द, कोर, कोट, कांगरा, पीपली, वेच, कड़ी, आंकड़ी... आदि। डा. . महेंद्र भानावत के अनुसार भील, मीणा ही नहीं, राजस्थान की लगभग हर सामाजिक सेवा धर्म से जुड़ी जातियां, बैठकी, कृषि धर्म को धारण करने वाले समुदाय ऐसे मादलिया धारण करते हैं। यह आत्मिक खुशी और पारस्परिक सम्मान का प्रतीक भी है। गुर्जर, रायका, रेबारी आदि में इसे लेकर बड़ी आस्था है। जब इसको धारण किया जाता है तो विवाह की तरह का "नांवा संस्कार" आयोजित होता है। बंधु बांधवों के यहाँ बिनोला खाना और फिर जात जीमन होता है। इसको धारण करने की अपनी मर्यादाएँ हैं, सीमाएँ हैं, नियम हैं! (उदयपुर के आदिवासी)

सांझी अंकन : श्राद्ध पक्ष में भित्ति मंडन

दीपावली में पितरों के चिह्न की आरती उतारती महिलाएँ।

यह प्रतीक प्रत्येक लोक देवी देवता का हो सकता है। बहुत ही कलात्मक और सृजनात्मक। जैसे : काला और गोरा भैरूजी, धर्मराज यानी देवनारायण, राडा रूपन, मामादेव, खाखलदेव, ताखाजी यानी तक्षक नामक नागदेव, गोगाजी, भूनाजी, भोजाजी आदि। घर के पूरबज यानी पूर्वज बावजी की पुतली छोटी होती है। ये धागे में पिरोकर बांधी जाती है लेकिन यह धागा कपास का नहीं होता। भेड़ की ऊन को कातकर बनाया जाता है। परिवार में बालक होने पर नांवा में बधापा करवाया जाता है। तब भोज होता है। स्त्री पूर्वज होने पर मातलोक कहे जाते हैं। बालक और बालिका पूर्वज होने पर करंडक (बेंत की टोकरी) में विराजित किए जाते हैं।

मेवाड़ के गाँव में ऐसा कोई कृषिजीवी घर नहीं होगा जहाँ नांवा नहीं मिले। बड़े जतन से रखा जाता है। पूजा भी जाता है। ऐसा कोई आस्तिक व्यक्ति नहीं होगा जिसमें नांवा धारण करने वाले को नमन नहीं किया हो। सोनी परिवार सांचा, ठप्पा की उसी विधि से बनाते हैं जैसे टकसाल में सिक्के बनाए जाते थे। उदयपुर के भारतीय लोक कला मंडल में ऐसे अनेक मादलियों का अच्छा संग्रह है। कुछ पारंपरिक और कुछ नवीन विषय वाले।

मानव ने अपनी पहचान के अनेक प्रयास किए हैं। शरीर पर जन्मजात चिह्न लासन और लांछन कहे जाते हैं। सामुद्रिक शास्त्र क्या कहता है? उष्णिष, पेच, पगड़ी, साफा, हार, चौसर, हंसली सहित गुदना से अपनी पहचान दिखाई तो मुद्रिका, चूड़ामणि क्या थे! शकुंतला, रामकथा में भी ऐसे चिह्नों पर चर्चा है... क्या कहीं नांवा भी नामलेवा है? जबकि इसका बहुत प्रचलन है। स्मृतिपटल मिस्र से लेकर भारत में अनेक रूपों, आकारों में मिलते हैं। इनको वीरगळ भी कहा जाता है। गुजरात और राजस्थान के पाळिये आकार-प्रकार में भिन्न नहीं मिलते। दिवंगत होने वाले स्त्री-पुरुष अश्वादि वाहनों पर अथवा गाड़ी पर आरूढ़, मिलते हैं तो कहीं-कहीं केवल हाथ के चिह्न भी दिखाई देते हैं। ये रूप भिन्न क्यों हैं, हथेलियों और भुजा सहित त्रिकोण बनाते हाथों की छाप होने के पीछे क्या मान्यताएँ रही हैं, आयुध के रूप में कमंडल, मालाओं से क्या अभिप्राय है, रथारूढ् या छकड़े पर विराजमान होने की वजह

क्या है— कई दृष्टि से इस संबंध में विचार किया जा सकता है।

श्राद्ध पर्व भी है दीपोत्सव

आश्विन नहीं, कार्तिकी अमावस पर भी पितरों को सामूहिक जलांजलि की परम्परा है। आंधीझाड़ा, दाभ, पलाश को गूंथकर बनाई जाती है बेल और फिर खेत में जल की धारा बहाई जाती है, कही जाती है दर्भ और गाय से उद्भव की कथा, श्राद्ध की एकदम अलग धारणा! परंपराओं का देश भारत!

दीपावली पर जहाँ सभी लक्ष्मी पूजन करते हैं, वहीं दाभ गुर्जर समाज द्वारा पूर्वजों का श्राद्ध किया जाता है। इसके लिए लोग अपने घर से पूजा की सामग्री लाते हैं। समाज के राव यजमान के साथ एक विशेष लोकगीत गाते हुए नदी या तालाब के पास पहुंचते हैं।

वहाँ सभी लोग मिलकर पूजन व धूप पूर्वजों के निमित्त करते हैं। बाद में आंधी झाड़ा और मुंडापाती की लता या बेल बनाते हैं। इसे बेलड़ी लगाना भी कहते हैं। सभी लोग पानी की धारा के पास कतार में लगते हैं और हाथों में पूड़ी व खीर ले लेते हैं। अन्त में तीन बार पानी में हाथ की खीर पुड़ी को हिलाने के बाद एक साथ छोड़ देते हैं।

इस समाज का यही श्राद्ध विधान है। यह कनागत से अलग है और इस समुदाय की अलग ही मान्यता को बताता है लेकिन यह मान्यता समान है कि ऐसा करने से पूर्वज सुख और समृद्धि का आशीर्वाद देते हैं। इसके बाद सभी लोग पड़वा को गाय का पूजन करते हैं। गाय को छेड़ा खिलाया जाता है।

कला का कनागत : आलेख्य का आसोज (पितर पक्ष/ चित्र पक्ष)

आश्विन के महीने में भित्तिचित्र बनाने की परिपाटी बहुत पुरानी है। उस काल की जबकि मानव ने बारिश में धूली हुई पहाड़ी पत्थर वाली भित्तियों को उघाडी देखा और चींटी, कर्मला - कामला, गजाई, घेंगा आदि रेंगने वाले जंतुओं से बचाव के लिए गाय के गोबर का प्रयोग करना सीखा। बाद में, गोबर के उभरांकन सुगम रूप से करने के लिए आधार पर हिरमिच से रेखांकन किया। शैलाश्रय में भी ऐसे अंकन मिल जाते हैं। हिरमिच और खड़िया के नाम हड़मची और खड़मची क्या ऐसे ही हो गए!

गृहिणियाँ और महिलाएं, खासकर लड़कियाँ इस काम में आगे आईं। गुहाओं में गोबर से सज्जा का यह काम काम संजा या संझ्या भी कहा जाने लगा। संझ्या को सांझ से जुड़ा कन्या पर्व कहा जाता है, यह क्वार के कनागत का पक्ष पर्व भी है। सांझी, संझ्या, संध्या, क्वार चितराम, मामुलिया, भितां, रनु, रली, झांजी ... कई नाम मगर एक ही पर्व।

यह विश्वास भी पनप गया कि यह श्राद्धपक्ष में लोकदेवी संझ्या के स्मरण का सुअवसर है। लेकिन, इसमें पूर्ववर्ती पीढ़ियों के पात्रों, जो कि पूर्वज — पितर हैं, को उपकरणों, गतिविधियों समेत चित्रित करने का काम तो किया ही जाता है। गुहा चित्रों की पृष्ठभूमि इस प्रसंग में तुलनीय है। पानी पर रंग, आंगन में पत्तों से अंकन बहुत बाद में आया। उत्तर मध्यकाल में तो सांझी पर पदों की रचना भी होने लगी।

हमें पता है कि कन्याएँ तिथि के अनुसार गाय के गोबर से नित नई आकृतियाँ बनाकर पत्तों, फूल—केसर, पंखुडियों से उसे सजाती हैं और फिर आरती करती हैं। 'आरती' यानी अपनी ही बनाई गई कला को कोई बुरी नजर न लग जाए, इसलिए निराकरण का उपाय। आरात्रिक या आरार्तिक... आरती का मूल विचार इस पर्व के साथ जुड़ा है। गो गोबर, गोलमण्डल, गुलपोशी, गोधूली वेला, गीतों से गुणगान... और पूरे पन्द्रह दिन बाद विसर्जन...। गुहा से गमन।

वेद में उषादेवी और रात्रि देवी के आवाहन का संदर्भ है मगर संध्यादेवी के पूजन का यह अनूठा पर्व है, जो प्रत्येक तिथि के साथ जुड़ी है और तिथि के वृद्धिसूचक अंकों के अनुसार अपना आकार तय करती जाती है... नारदपुराण में इन्हीं गुणों के कारण संध्यावली को श्रेष्ठ नायिका कहा गया है जो पति, पुत्र सहित महालय में लीन होती है लेकिन इसका खास सन्दर्भ सांब पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण धारण किए हुए हैं लेकिन यह बड़ा सच है कि लोक से ही पुराणकारों ने ज्यादातर उधार लिया है। लोक का श्लोक किया है। हमें लोक के संदर्भ लोक में ही खोजने चाहिए। देखिए :

आला फूलां भरियो वाटको जी कांई,
संझ्या की बाई ओ,
संझ्या ने भेजो करां संझ्या री आरती...।

अनेक गीत इसको गरिमा दिए हैं।

कानवन गाँव के श्री नंदकिशोर प्रजापति और उनके साथियों ने संजा गीत संग्रह तैयार कर बंटवाया है। उज्जैन की डा. . ज्योति बाला बैस और बेटी ने इस चित्र पर्व के चित्रों को जुटाया है और कहा है कि जितने दिन होते हैं, उससे ज्यादा त्योहार हम मना लेते है। उत्सव प्रिय जो ठहरे। जब उत्सवों को धर्म से सम्बद्ध किया तो ये आस्था में रच बस गए और पूज्य हो गए।

संजा लोकदेवी है और भादौ की पूर्णिमा को अपने मायके पधारती हैं। सखियों के संग खूब चुहलबाजी करती हैं। बालिकाओं द्वारा दीवार पर गोबर से अनेक मंगल आकृतियाँ निर्मित की जाती हैं और सांझ ढले अर्चना होती है। दीप प्रज्वलित कर आरती की जाती है और कोमल कंठों से निकली स्वर लहरी सांझ वेला को रसमयी बना देती है। एक सांझी गीत

काजल टीकी लो भई काजल टीकी लो,
काजळ टीकी लई ने म्हारी संजा बई के दो,
संजा बई को सासरो सांगानेर,
परण पधारिया गढ़ अजमेर...।

खूब सारे छोटे छोटे गीत जो लगभग बाल कविता जैसे हैं, गाये जाते है, सबसे प्रमुख अंग है प्रसाद वितरण, जो खट्टा, मीठा, तीखा कैसा भी हो, आसानी से वितरित नहीं होता है। परीक्षा है ये नाक के घ्राण शक्ति की, कानों की आवाज से पहचानने की, आँखों की छिपाकर रखी चीज को जानने की कि आखिर है क्या? बताने में असफल रहने पर भी प्रसाद तो मिलता ही है। भुट्टे के दाने, अमरूद, सेवफल, से लेकर चना चिरौंजी तक और फिर अगली लड़की के घर जाकर यही क्रम दोहराया जाता है, जब तक सबके घर पूजन न हो जाय।

हमने भी मनाया इस पर्व को खूब उल्लास के संग। एक गुट होता था सहेलियों का जो पहले गोबर फिर फूल पत्तियों की जुगाड़ करता। भाई भी मदद करते। पान की दुकान से सिगरेट की पन्नी कबाड़ लाते संजा की सज्जा के लिए। कोई कचहरी के बाहर रद्दी कार्बन और बटरपेपर बीन लाता। घर के हल्दी, कुमकुम, चावल और हो जाती संजा तैयार। डा. . ज्योति बाला लिखती हैं कि बालिकाओं द्वारा गोबर से दीवाल पर प्रतिदिन भिन्न भिन्न मंगल आकृतियों का निर्माण कर इस उत्सव को मनाया जाता है। सांझी को रिझाया जाता है। मीठी मालवी बोली का प्यारा सा गीत :

संजा तो मांगे हरो हरो गोबर / कहाँ से लाउ भई हरो हरो गोबर/ किसान घरे जऊं/ हाँ से लाउं/ ले भई संजा हरो हरो गोबर,/ संजा तो मांगे/ लाल पीला फुलड़ा/ कहाँ से लाऊं भई / हरा पीला फुलड़ा/ माली घरे जऊ/ हाँ से लऊं/ ले भई संजा हरा पीला फुलड़ा।/ संजा तो मांगे/ दूध पतासा/ कहाँ से लउं भई/ दूध पतासा/ हलवाई घरे जाऊं/ वहाँ से लाऊं/ ले भई संजा दूध पतासा।/

वैश्विक स्तर पर मृत्यु के पश्चात् श्राद्ध की अवधारणा

डा. काशीनाथ मिश्र

उच्चतर माध्यमिक शिक्षक, 'विद्या भारती' अखिल भारतीय शिक्षण संस्थान, सरस्वती विद्या मन्दिर, शास्त्रीनगर, मुंगेर।

भारतीय परम्परा में वेद, स्मृति तथा लोकाचार- इन तीनों में पितर की अवधारणा पर विमर्श के बाद अब हम विश्व-सभ्यता की ओर बढ़ें। यूनान, इटली, मैक्सिको, मिस्र, चीन एवं तिब्बत की बौद्ध संस्कृति, ईसाई परम्परा, यहूदियों की परम्परा, अफ्रीकी परम्परा एवं मुस्लिम समाज में भी जब हम मृत्यु, पितर तथा पूर्वजों के प्रति अवधारणा एवं उनकी स्मृति में किए गये कर्मकाण्ड को देखते हैं तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'भस्मान्तं शरीरम्' की दुहाई देकर पूर्वज पितरों की अवधारणा का ही उच्छेदन कर देने वाले आर्यसमाजियों के सिद्धान्त सभ्यताओं के विकास के समय से चले आ रही वैश्विक मान्यताओं के विपरीत हैं। जीवित माता-पिता पितर नहीं हैं, बल्कि पितर वे हैं, जिनकी मृत्यु हो चुकी है। पितर वे हैं जो ईश्वर से लेकर हमारे बीच तक एक शृंखला बनाते हैं। उसी शृंखला को तैत्तिरीय उपनिषद् ने 'प्रजातन्तु' कहा है। पितृपक्ष में जब हम आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त (ब्रह्मा से लेकर अपने दिवंगत पिता तक- तृण पर्यन्त) को हम सनातन धर्मानुसार जल अर्पित करते हैं तो पृथ्वी के समस्त मानव हमारे बन्धु-बान्धव स्वतः बन जाते हैं। यहीं है सनातन धर्म में "वसुधैव कुटुम्बकम्" की अवधारणा।

मृत्यु के पश्चात् जीवन के सम्बन्ध में वैश्विक स्तर पर विभिन्न संस्कृतियों में मान्यताएँ अलग-अलग है। साक्ष्य के तौर पर भारतीय जीवन दर्शन का मूल आधार वेद एवं उपनिषदों में जन्म-जन्मान्तर की कथा, कर्म अनुरूप पूर्व एवं पश्चात् जीवन, अर्थात पुनर्जन्म, देव लोक, पितर लोक, तदनुसार, देवपूजन एवं पितृपूजन का विशद विधान है–

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥[1]

अर्थात् हे अर्जुन! मेरे और तुम्हारे बहुत से जन्म हो चुके हैं। उन सब को तुम नहीं जानता, किंतु मैं जानता हूँ।

भारतीय वाङ्मय में मृत्यु के पश्चात् जीवन के सम्बन्ध में बहुत सारे प्रमाण मिलते हैं। इससे जुड़ा पितर लोक हेतु श्राद्ध विधान का भी वर्णन है, और भारतीय संस्कृति में व्यापक रूप से मृत्यु पश्चात् द्वादश तिथि तक दैनिक श्राद्ध, फिर मासिक श्राद्ध (छाया) एवं वार्षिक श्राद्ध, शास्त्र-सम्मत विधि-विधान एवं लोकाचार अनुरूप किया जाता है। लेकिन भारतीयेतर संस्कृतियों में श्राद्ध, पिंडदान, पितरों के प्रति आस्था, तथा वार्षिक कर्म का क्या विधान होता है, यह उत्कण्ठा का विषय हो सकता है।

प्रस्तुत आलेख के माध्यम से इसी उत्कंठा का समाधान करने की प्रयास किया रहा है कि विश्व की

1. श्रीमद् भगवत गीता अ. 4, श्लोक.5

प्राचीन मिस्र की पुस्तक - 'मृत्युग्रन्थ' में यमलोक के चित्र

प्रमुख सभ्यताओं में मृत्यु के पश्चात् क्रिया की क्या अवधारणा है। मृत्यु के पश्चात् होने वाले कर्म आदि या अन्य क्रिया की झाँकी क्या है?

ग्रीस (प्राचीन यूनान) मैं मृत्यु पश्चात् क्रिया

ग्रीस को पश्चिमी सभ्यता का गुरु कहा जाता है। यहाँ प्राचीन काल से ही यह विचार रहा है कि यदि कोई आपको बचाता है तो आपको उसे वही सम्मान देना चाहिए जो आप किसी देवता को देते हैं। रोमन इतिहास में कई बार उनके उच्च पदस्थ नेताओं, जो कि राजकीय पन्थ के मुख्य पुजारी भी थे, उनके मृत्यु के पश्चात् उन्हें देवता घोषित किया गया।

उदाहरण के लिए, जूलियस सीजर (100- 44 ईसापूर्व) ने स्वयं की एक प्रतिमा को क्यूरीनस, प्राचीन रोमन युद्ध की देवी के मन्दिर में स्थापित करवाया था। कई प्राचीन समाज जैसे कि असीरियन, ईरानी और मिश्रवासियों में सर्वोच्च शासको को देवताओं या अर्ध देवता के रूप में देखा जाता था।[2]

मृतक उपासना की प्रथा, चाहे वह परिवार के सदस्य हो, राज्य के शासकगण हो, पूरे इतिहास में, कई प्राचीन सभ्यताओं में सामान्य रूप से रही है। लेकिन, लैटियम और रोम के कुलीन मृतकों के लिए मृतक के यहाँ मँहगे अन्तिम संस्कार, प्रसाद और भोज, पुनर्जन्म की उम्मीद, देवताओं के साथ जुड़ाव, स्मारक एवं प्रतिमा निर्माण, सार्वजनिक भवन आदि के साथ दान की भी परम्परा रही है।

इटली में ला फेस्टा देई मोर्टी

आज के इटली में मृत प्रियजनों के नाम, 2 नवंबर को एक उत्सव मनाया जाता है, जिससे 'ला फेस्टा देई

2. प्रो. डेनिस पी लेटन, स्कूल का लिबरल स्टडीज, अंबेडकर यूनिवर्सिटी, दिल्ली "रोमन जगत में धर्म और ईसाई मत का उदय" पृ. 06

मिस्र की सभ्यता में ममी के रूप में पूर्वजों को सुरक्षित रखना।

Egyptian mummy case

मोर्टी' कहते हैं। यह इटली में मृतकों के दिन का संस्करण है। इसमें परिवार मृत प्रियजनों का उत्सव मनाने के लिए एकत्रित होते हैं।

ऐसा माना जाता है कि मृतक बच्चे के लिए उपहार लेकर आते हैं और दावत और मौज मस्ती के दिन का आनन्द लेने के लिए परिवार के साथ रहते हैं। इस दिन मृतक को याद करके लोग जीवन और मृत्यु के चक्र के बारे में जागरूकता पैदा करते हैं और उसे प्रकृति में लय होने का जश्न मनाते हैं जिसमें वे सब मौजूद हैं। यह अमेरिका का उत्सव **'ऑल सोल्स डे'** के साथ मेल खाता है। इस उत्सव को अक्सर कैथोलिक छुट्टियों के साथ जोड़ दिया जाता है।[3]

मेक्सिको में दीया डे लॉस मुर्टोस

'दीया डे लॉस मुर्टोस', 2 नवंबर को मेक्सिको, दक्षिण अमेरिका के कुछ हिस्सों और उत्तरी अमेरिका में पूर्वजों के नाम मनाया जाता है। पके हुए समान, सजावट और कब्रिस्तानों की यात्रा के साथ यह एक रंगीन उत्सव है। यहाँ परिवार अपने परिजनों की कब्रों की सफाई कर सजाते हैं।

जापान में 'ओबोन महोत्सव' इसी तरह का उत्सव है। यह मृतकों का एक जापानी त्यौहार है। यह जुलाई या मध्य अगस्त में मनाया जाता है। यह सामुदायिक उत्सव एवं पारिवारिक भोज का दिन होता है, जब आत्माओं को घर वापस लाने के लिए लालटेन दिखाया जाता है।

मिस्र की संस्कृति

मृत्यु संस्कार से संबंधित मिस्रवासियों की संस्कृति में मरणोत्तर जीवन से संबंधित प्रमाण मिलता है। उनके अन्त्येष्टि अनुष्ठानों में शरीर को मम्मी बनाना, जादुई मन्त्र, कब्र में दैनिक उपयोग के समान के साथ मृतक के मम्मी निर्मित शरीर को दफनाना शामिल था। आरंभिक शाही कब्रों में पाए गए सामान, एवं मानव बलिदान, मरणोपरांत जीवन में एक उद्देश्य की पूर्ति के विचार को स्पष्ट करता है। जिन लोगों की बलि दी गई वे संभवतः

3. www.joincake.com इटली की मृत्यु परंपराएँ अनुष्ठान और मान्यताएं

चीन का पितर पर्व- मान्यता है कि हमारे पूर्वज घर के पास से गुजरते हैं, उन्हें अगरबत्ती की सुगन्धि दी जाती है।

परलोक में राजा की सेवा करने के लिए थे। कब्र की मूर्तियाँ और दीवार पर बने चित्र कुछ खास लोगों से मिलती-जुलती बनाई गई होगी, ताकि वह अपना जीवन समाप्त होने के बाद राजा का अनुसरण कर सके। उनका मानना था कि जब वे मरेंगे तो उनका शरीर उनके जीवित दुनिया के समान ही अगले जीवन में भी अस्तित्व में रहेंगे। यदि किसी व्यक्ति के जीवन काल में उचित तैयारी की जाए तो वह चीज उन्हें अगले जीवन में मिलेंगे।

मिस्र में फराओ (राजा) की मृत्यु के बाद की क्रिया बहुत ही रोचक है। वहाँ 'राजाओं की घाटी' नामक कब्रिस्तान में 2003 तक 600 चट्टान को काटकर बनाया गया कब्र पाया गया। जो लगभग 3300 बी सी तक के माने जाते हैं। एक शक्तिशाली राजवंश के अन्तिम शासक टूटनखेतन के कब्र में मम्मी को शुद्ध सोना चढ़ा कर अन्य सामानों के साथ रखा गया था। वह 26 फुट गहरा चट्टान को तराश कर बनाया गया था। एक मम्मी वाले ताबूत के अतिरिक्त दो ताबूतों में मौत के बाद के जीवन में जरूरत के समान, बोर्ड गेम्स, कांस्य का बना उस्तरा, कपड़े, अन्त वस्त्र, भोजन की थाली, डब्बे एवं शराब आदि रखा हुआ था। मम्मी वाले ताबूत, सरई और जैतून के पत्ते की माला, कमल की पंखुड़ियां, मकई के फूल आदि से सजा हुआ था। कब्र का दीवार तस्वीरों से सजा हुआ था। मम्मी पर गले का पट्टा, डिजाइनदार हार और कड़ा, अंगूठियां, ताबीज, जूते, उंगलियों के मियान, आंतरिक मुखौटा सभी चमकता हुआ शुद्ध सोने का था। लगभग 3000 वर्ष पुराने होने के बाद भी उन सामानों में चमक मृत्यु के पश्चात् शरीर में जीवन को लोग आधार मानते हैं।[4]

चीन की बौद्ध संस्कृति का अंत्येष्टि संस्कार

बौद्ध अन्त्येष्टि मृतक के एक जीवन से दूसरे जीवन में परिवर्तन का प्रतीक है। भिन्न देशों में फैले बौद्ध में दाह संस्कार पसंदीदा विकल्प है। हालांकि दफनाने की भी अनुमति है।

तिब्बत में बौद्ध लोग मृत शरीर को आकाश में अर्थात खाली स्थान पर या पहाड़ों पर काट कर या फाड़ कर छोड़ देते हैं, ताकि पक्षी जानवर उसे खा ले। रोने चिल्लाने को अनुचित माना जाता है। तिब्बती बौद्ध का मत है कि अन्तिम संस्कार के धर्म-दान, खुशनुमा माहौल, मृतकों की आत्मा को बेहतर जीवन जीने में मदद करता है।

चीनी अन्तिम संस्कार अनुष्ठानों में, व्यापक रूप से चीनी लोग धर्म से जुड़ी परंपराओं का पालन करते हैं। इसमें मृतक की उम्र, मृत्यु का कारण और मृतक की वैवाहिक और सामाजिक स्थिति के आधार पर अलग-अलग संस्कार होते हैं। चीन के विभिन्न हिस्सों में अलग-अलग अनुष्ठान किए जाते हैं। कई समकालीन चीनी लोग बौद्ध धर्म या ईसाई धर्म जैसे विभिन्न धार्मिक विश्वासों के अनुसार अन्तिम संस्कार करते हैं।

4विलियम ए आर, 'डिस्कवरिं ग टूट" दी सागा कंटिन्यूज हॉर्नबिल, एनसीईआरटी नई दिल्ली
5.Traditional customs.com 12th September 2010

पितरों के प्रति श्रद्धा का पर्व- 'किंग मिंग उत्सव'

कम्बोडिया में पितरों की स्मृति में- चुम-बेन

इसमें दफन करना एवं दाह संस्कार करना दोनों ही रीति प्रचलित है। सामान्य तौर पर अन्तिम संस्कार समारोह 7 दिनों में किया जाता है और शोक मानने वाले मृतक के साथ, रिश्ते के अनुसार अंत्येष्टि पोशाक पहनते हैं। परंपरा अनुसार, चीन परंपरा में बड़े, छोटे की मृत्यु पर सम्मान नहीं करते हैं। वहाँ मृत्यु पर घर के दरवाजे पर सफेद बैनर लगना आम बात है। अन्तिम संस्कार के लिए दफन स्थल या दाह संस्कार स्थल पर लाने की प्रक्रिया है। इस दरम्यान आमतौर पर खाद्य पदार्थ, धूप और जोश पेपर का प्रसाद चढ़ाया जाता है। कभी-कभी भिक्षुओं द्वारा ताओवादी या बौद्ध प्रार्थनाएँ की जाती है, ताकि मृतक की आत्मा को शान्ति मिल सके और वह बेचैन भूत बनने से बच सके।

प्रत्येक वर्ष 'किंग मिंग उत्सव' में लोग अपने पूर्वजों की कब्र पर जाकर और उनकी कब्रों को साफ सफाई करके उन्हें सम्मान देते हैं। बाद की पीढ़ियों को पुर्वजों की पूजा की इस प्रक्रिया के माध्यम से भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जाता है।[5]

चीन में पूर्वजों की पूजा मुख्य रूप से पुरुष पूजा पर केंद्रित है। अन्तिम संस्कार के बाद परिवार अन्य मृत पूर्वजों के घरेलू वेदी पर एक पैतृक गोली स्थापित करते हैं। प्रतीकात्मक रूप से यह पूर्वजों को एकजुट करता है और पारिवारिक वंश का सम्मान करता है। प्रतिदिन वेदी के सामने धूप जलाई जाती है। उनके सामने महत्वपूर्ण घोषणाएँ की जाती है और पसंदीदा भोजन पेय पदार्थ द्विमासिक और विशेष अवसरों पर दिए जाते हैं, जैसे कि 'किंग मिंग फेस्टिवल' एवं 'झोंगयुआन फेस्टिवल'।

दक्षिण चीन में पूर्वजों की पूजा प्रचलित है। वहाँ वंश बंधन मजबूत है और पितृवंशी पदानुक्रम वरिष्ठता पर आधारित नहीं है, जबकि उत्तरी चीन में सांप्रदायिक देवताओं की पूजा प्रचलित है। पारंपरिक धर्म जो 'जिया' 'सॉन्ग' और 'झोड' राजवंशों के बाद अस्तित्व में था। वह स्वर्ग और पूर्वजों की पूजा से विकसित हुआ। इसमें स्वर्ग का आदर करना, पूर्वजों का सम्मान करना, मृतकों को विदा करने में अच्छा देखभाल करना और दूर के पूर्वजों के लिए बलिदान बनाए रखना, इस धर्म की बुनियादी धार्मिक अवधारणाएँ और भावनात्मक अभिव्यक्तियाँ थी।[6]

6.www.religionfacts.com/Chinese_religion/practices/ancestor _worship, यांग और टैम्नी 2011 पृ. 280
7. कैनन 1176.3 'शोक और अंत्येष्टि' कैथोलिक विश्व का अमेरिकी सम्मेलन 7 सितंबर 20 सब 2015

चित्र : साभार- https://www.prokerala.com

'ऑल सोल्स डे' का आयोजन

2 नवंबर 'ऑल सोल्स डे' या मृतकों के दिन का वह दिन है, जिसमें पूर्वजों को याद किया जाता है। उस दिन परिवार अपने मृत रिश्तेदारों के लिए मामबत्तियाँ जलाने, फूल चढ़ाने और अक्सर पिकनिक या भोज मनाने के लिए कब्रिस्तान जाते हैं। 'औल सेन्ट्स डे' के पहले की शाम और हैलोज़ इव या हेलोवीन, अनौपचारिक रूप से नरक की वास्तविकताओं को याद करने, बुराई में खोई हुई आत्माओं का शोक मनाने का कैथोलिक दिन है। यह आमतौर पर संयुक्त राज्य अमेरिका और यूनाइटेड किंगडम के कुछ हिस्सों में हल्की-फुल्की डर की भावना से मनाया जाता है।(विकीपीडिया)

संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में मृतकों को सम्मानित करने के लिए कब्र पर फूल, मोमबत्तियां, भोजन, छोटी कंकर एवं जीवन के मूल्यवान वस्तुओं को कब्रों पर साल भर रखे जाते हैं। अमेरिका में कई लोग स्मृति दिवस पर दिवंगत प्रियजनों का सम्मान करते हैं। खासकर ईस्टर, क्रिसमस, कैंडलमास और ऑल सोल्स डे के दिन, अपने रिश्तेदारों के साथ चर्च में प्रार्थना करते हैं, जिन्होंने देश की सेवा में सेवा दी थी, या मारे गए थे। उनके श्रद्धा में मेमोरियल डे का संघीय अवकाश है। 147 कब्रिस्तानों ऐसे सेवकों के लिए प्रत्येक कब्र पर अमेरिकी झंडे लगना आम बात है। पारंपरिक रूप से यह मई महीने के आखिर सोमवार को मनाया जाता है।

ईसाई परंपरा

ईसाई संप्रदायों के विभिन्न समूह अलग-अलग अन्तिम संस्कार समारोह करते हैं, लेकिन अधिकांश में प्रार्थनाएँ करना, बाइबल धर्मग्रंथों को पढ़ना, धर्मोपदेश, स्तुति एवं संगीत सुनना शामिल होता है। इसी में पारंपरिक रूप से दफन का कार्य चर्च के मैदान जैसे पवित्र भूमि पर किया जाता है। शरीर में पुनर्जीवन के विश्वास के कारण दफनाने की पारंपरिक प्रथा रही है। बाद में दाह संस्कार व्यापक रूप से उपयोग में आने लगे।

कैथोलिक विशपों के प्रमुख ने अमेरिकी सम्मेलन में कहा 'चर्च ईमानदारी से अनुशंसा करता है कि मृतकों के सबों को दफनाने की पवित्र परंपरा का पालन किया जाए। फिर भी चर्च दाह संस्कार पर रोक नहीं लगाता, जब तक कि इसे ईसाई सिद्धान्त के विपरीत कारणों से नहीं चुना गया हो।'[7]

यूरोप के कैथोलिक देशों में जो बाद में इंग्लैंड में एंग्लिकन चर्च के साथ जारी रहा, 1 नवंबर, 'ऑल सेन्ट्स डे', के दिन, अभी भी उन लोगों की विशेष रूप से पूजा करने के दिन के रूप में जाना जाता है, जिनकी मृत्यु हो गई है और जिन्हें अधिकारिक संत माना गया है।

यहूदियों का अन्तिम संस्कार कर्म

इस्राइल एवं अन्य पश्चिमी देशों में यहूदियों द्वारा अन्तिम संस्कार एवं क्रिया कर्म का विधान कुछ अलग है। वे सब को दफनाते हैं। दफनाने के दिन से एक सप्ताह तक उनमें दुख या मातम की अवधि चलती है, जिसे शिव के नाम से जाना जाता है। इसमें मृतक के सात प्रथम श्रेणी के रिश्तेदार, अर्थात्- माता-पिता, पुत्र- पुत्री, भाई-बहन, तथा जीवनसाथी सम्मिलित होते हैं। अंत्येष्टि के
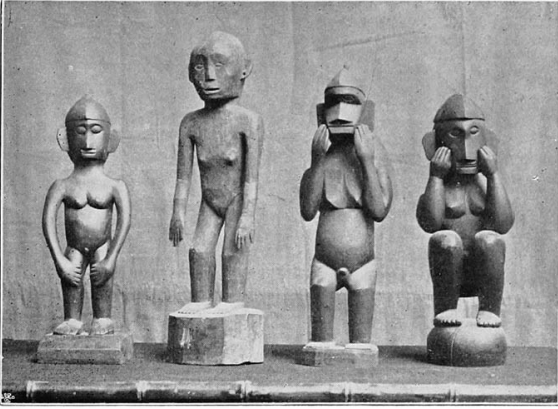
फिलीपीन्स में पूर्वजों का आत्मा की मूर्तियाँ

स्रोत : Frederic H. Sawyer - *The Inhabitants of the Philippines* (1900)

वियतनाम में में पूर्वजों के लिए अर्पण

स्रोत : By Thang Nguyen from Nottingham, United Kingdom

समय मातम में सम्मिलित होने वाले प्रथम श्रेणी के रिश्तेदार को 'केरियाह' की प्रक्रिया करनी होती है। इस प्रक्रिया में बाहरी परिधान को फाड़ देना होता है। और इस फटे हुए परिधान को शिव के अन्त तक यानी पूरे सप्ताह तक पहनना होता है। शिव के दरम्यान एक सप्ताह तक लोग स्नान करने, चमडें के जूते या गहने पहने, या सेविंग करने से परहेज करते हैं। फर्श पर बैठना प्रथा है। शिव में भाग लेने के दौरान आगंतुक परंपरागत रूप से मेजवान की भूमिका निभाते हैं। अक्सर भोजन लाएंगे और शोक संतृप्त परिवार और मेहमानों को पड़ोसेंगे। परिवार के लोग शिव काल के दौरान खाना पकाने से बचते हैं। आगंतुक इसकी जिम्मेदारी लेते हैं। 30 दिन तक श्लेशिम अवधि होती है। इसमें शादी या धार्मिक उत्सव में भाग लेना मना होता है। माता-पिता, बेटा-बेटी एक वर्ष तक उत्सव एवं संगीत समारोह में भाग नहीं लेते। यहूदी मृत्यु के सालगिरह को यार्टशेयर कहते हैं। इस अवसर पर कई रीवाज है। यथा— उपवास करना, कब्र पर मोमबत्ती जलाना, मृतक के नाम आराधनालय में आराधना करवाना या कहीं कम मांस व मदिरा पीना, तो कहीं प्रथम साल भर तक कपड़े से ढके मृत्यु स्मृति पत्थर का अनावरण करना आदि।

अफ्रीकी देशों में मृत्यु अनुष्ठान

मृत्यु, अफ्रीकी जीवन चक्र के विस्तृत उत्सव का एक अन्तिम चरण है। अफ्रीका में मृत्यु को एक अनुष्ठान के माध्यम से मान्यता दी जाती है, जो मृतक को अगले लोक की यात्रा के लिए तैयार करता है। वहाँ दूसरा अन्तिम संस्कार पहले दफन के 40 दिन बाद होता है। आमतौर पर सबसे बुजुर्ग और सबसे महत्वपूर्ण लोगों को सबसे शानदार दूसरा दफन मिलता है। 'मैक्मिलन एनसाइक्लोपीडिया आफ डेथ एंड डाईंग'[8] के मुताबिक अफ्रीका में मृत्यु अनुष्ठान, मृतक की आत्मा को शान्ति एवं पूर्वजों के बीच अपना स्थान लेने के लिए है। वे मानते हैं कि मरे हुए व्यक्ति परिवार की रक्षा करते हैं। मृतक को दरवाजे के बजाय दीवार में छेद के जरिए घर से बाहर निकाला जाता है और इसके बाद छेद को बंद कर दिया जाता है ताकि वे वापस अंदर न आ सके। कब्रगाह के लिए टेढ़ा रास्ता अपनाया जाता है एवं उसे रास्ते में कांटे, शाखाएँ या अन्य बाधाएँ जैसी चीजों को फेंका जाता है, ताकि वह दोबारा घर का रास्ता न खोज ले। वहाँ की अंत्येष्टि में धार्मिक पहलू भी होते हैं, जिसका उद्देश्य मृतक की आत्मा को परलोक पुनरुत्थान या पुनर्जीवन तक पहुंचाना होता है। अफ्रीका में देम्बू समुदाय में प्रचलित

विश्वास है कि मृत संबंधियों की छाया कब्र से निकलकर परेशान करने आती है, क्योंकि उन्हें भुला दिया गया है या उपेक्षित या अप्रसन्न किया गया है। किसी आत्मा या छाया द्वारा पकड़ लिए जाने पर संकटग्रस्त व्यक्ति, बड़े अनुष्ठानिक जमघट का केंद्र बन जाता है। ठीक हो जाने पर वह छोटा चिकित्सक बन जाता है।

मुस्लिम समाज में पूर्वजों का स्मरण

मुस्लिम समाज में मृत शरीर को दफनाने के बाद मृत्यु भोज करने का नियम है। इसको चेहल्लुम के नाम से जाना जाता है। इसमें गरीब-वर्ग के लोगों को भोजन कराने का नियम है। ऐसा माना जाता है कि अगर मरने वाले की रूह को किसी नेक काम का सबाब यानी कि पुण्य पहुंचा दिया जाए तो वह उस तक जरूर पहुंचता है और फिर उसे जन्नत प्राप्त होती है। इसी कारण से चेहल्लुम का फातिहा किया जाता है। केवल मृत व्यक्ति के परिजन ही फातिहा दिला सकते हैं।

(http/:lastjourney.in)

मुस्लिम संतों के अनुसार एक व्यक्ति सिर्फ एक बार जन्म लेता है। मृत्यु के बाद उस व्यक्ति को कब्र में दफना दिया जाता है। जहाँ वह कयामत आने तक रहता है। कयामत के दिन अर्थात जब महाप्रलय होगी उस समय सभी को, जिसके शरीर को कब्र में दफनाया गया था, जीवित कर दिया जाएगा और उनके अच्छे और बुरे कर्मों का लेखा-जोखा होगा। अंत्येष्टि के पश्चात कुरान के अनुसार मानना है कि जब नेक बंदे जन्नत में जाएंगे दोबारा तब उनको याद आएगी कि पहले भी कर्म फल के बदले यही जन्नत का सुख मिला था। अब भी वही कर्मों का प्रतिफल मिला है और यह सही है जब वह दूसरी बार जन्नत में जाएंगे तो उनको कर्मों की फलस्वरूप जन्नत का सुख मिलेगा (कुरान शरीफ सूरह अल बकरा 2.25।)

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि सनातन धर्म अनुरूप एकादशा, द्वादशा, मासिक छाया, पार्वन, वार्षिक श्राद्ध तथा गया श्राद्ध जैसा कर्म विधान विश्व के अन्य देशों में नहीं किया जाता है। भले अन्य देशों में बसे हिंदू अपनी संस्कृति को जरूर अपनाते हैं, फिर भी, किसी ने किसी रूप में विश्व के सभी संस्कृतियों में पूर्वजों के प्रति श्रद्धा देखी जाती है। इसका कालखंड भिन्न हो सकता है कहीं 7 दिन, तो कहीं 2 महीने या 4 महीने हैं। वार्षिक श्राद्ध के स्थान पर किसी खास दिन अपनी संस्कृति अनुरूप, जो भी विहित है, यथा 1 नवंबर या 2 नवंबर या फिर अगस्त का कोई दिन अपनी परंपरा अनुरूप मृत पूर्वजों के भोज करते हैं, लेकिन यह निश्चित है कि लोग पूर्वजों के प्रति श्रद्धा रखते हैं।

***

श्राद्ध किसे कहते हैं?

बृहस्पतिस्मृतौ-

संस्कृतं व्यञ्जनाढ्यञ्च पयोमधुघृतान्वितम्।
श्रद्धया दीयते यस्मात् श्राद्धं तेन निगद्यते॥

बृहस्पति स्मृति में कहा गया है कि भली भाँति पकाया हुआ अन्न जिसके साथ व्यञ्जन हो, वह दूध, मधु तथा घी से युक्त हो वह श्रद्धा के साथ जहाँ अर्पित किया जाये उसे श्राद्ध कहते हैं।

हेमाद्रि, चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड, श्राद्धकल्प, प्रथम भाग, अध्याय 10, यज्ञेश्वर स्मृतिरत्न एवं कामाख्यानाथ तर्करत्न (सम्पादकद्वय), कोलकाता, 1809 शक- 1888ई., पृ. 1039.पृ. 153.-

तीर्थरूप पितृभक्ति

विद्यावाचस्पति महेश प्रसाद पाठक
"गार्ग्यपुरम्" श्रीसाईं मन्दिर के पास, बरगण्डा, पो—जिला-गिरिडीह, (815301), झारखण्ड, Email: pathakmahesh098@gmail.com

भलें हम जीवित माता-पिता को पितर न मानें, पर इससे इनके प्रति हमारे कर्तव्य कम नहीं होते हैं। पुराणों ने माता-पिता को देवता मान लिया है, सम्पूर्ण पृथ्वी का प्रतिनिधि मान लिया है, तभी तो गणेजी की वह कथा प्रचलित है, जिसमें उन्होंने माता-पिता की परिक्रमा कर पृथ्वी की परिक्रमा का फल प्राप्त किया था। पौराणिक कथाओं की यही शैली है। वह मित्र की भाँति रोचकता के साथ हमें कर्तव्यों का उपदेश देती है। लेखक ने यहाँ माता-पिता के महत्त्व का निरूपण शास्त्रीय तथा पौराणिक शैली में किया है। पितृभक्ति का विवेचन करते हुए लेखक ने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम, नचिकेता तथा भगवान् गणेशजी का उदाहरण देकर लौकिक तथा पारलौकिक महत्त्व की व्याख्या की है। इनमें भी कतिपय प्रमाणों के आधार पर माता को पिता से भी गौरवमयी सिद्ध किया है।

अपने गुरुजनों, माता-पिता को सम्मान करना हमारी नैतिक-शिक्षा का एक अंग है। साक्षरता शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य कदापि नहीं हो सकता, बल्कि यह एक साधन है, मापदण्ड है। शिक्षा की अन्तरात्मा में तो चारित्रिक पुरुषार्थ की झलक मिलनी चाहिये, जिसमें उठने-बैठने, चलने-फिरने, बोलने-चालने, वाणी-व्यवहार आदि सभी शामिल हैं। पुनः यह भी कहा गया है— जहाँ धर्म नहीं, वहाँ ज्ञान बेकार है। धर्मज्ञान के बिना जीने का कोई अर्थ ही नहीं, इसे तो अधिकार के साथ प्राप्त कर जीवन को धन्य बनाना ही पुनीत कर्तव्य है—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः।[1]

'जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो, वही धर्म है।' दक्ष-स्मृति में वर्णित 'नव-नवक' एक शिक्षोपयोगी महत्त्वपूर्ण सूत्र है, जिनमें व्यक्ति के सदाचार एवं व्यवहारिक ज्ञान से सम्बन्धित नौ-नौ बातों की एक श्रृंखला है, जिनमें से एक है— नौ अक्षय सफल बातें— जो नौ प्रकार के व्यक्तियों को कुछ भी दिया जाता है, वह सफल अर्थात् अक्षय होता है—

मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणि।
दीनानाथविशिष्टेभ्यो दत्तं तु सफलं भवेत्॥[2]

अर्थात् 1. माता, 2. पिता, 3. गुरु, 4. मित्र, 5. विनयी, 6. उपकार करने वाला,

1 वैशेषिक सूत्र 1.2.
2 दक्षस्मृति 3.15.

7. दीन, 8. अनाथ एवं 9. सज्जन साधु-महात्मा व्यक्ति। यदि माता, पिता और गुरु इन तीनों में प्रत्यक्षदेव की भावना की जाय, तो हम इन्हें ब्रह्मा, विष्णु और महेश की उपाधि से भूषित पायेंगे। माता जन्म देती है इसलिए ब्रह्मा है, पिता पालन यानि पोषण करते हैं इसलिए विष्णु हैं तथा गुरु हमारे अन्दर के कुसंस्कारों का संहार करते हैं इसलिये शंकर हैं।

पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है, पिता ही परम तप है। पिता के प्रसन्न हो जाने पर सभी देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं।

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥[3]

माता सर्वतीर्थस्वरूप, पिता सर्वदेवस्वरूप हैं, इसलिये माता-पिता की पूजा करनी चाहिये। जो माता पिता की प्रदक्षिणा करता है, उसे सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रदक्षिणा का फल मिलता है। इसके सर्वोत्तम सन्दर्भ गणेशजी हैं। माता-पिता की पूजा से मनुष्य जिस धर्म को प्राप्त कर लेता है, वह हजारों यज्ञ एवं तीर्थयात्राओं से भी प्राप्त नहीं होता।[4]

तैत्तिरीयोपनिषद् के शिक्षावल्ली के एकादश अनुवाक में कहा गया है—

देवपितृकार्याभ्यां न प्रमादितव्यम्।

'अग्निहोत्ररूप और यज्ञादिअनुष्ठानरूप देवकार्य तथा श्राद्ध-तर्पण आदि पितृकार्य के सम्पादन में कभी भी आलस्य या अवहेलनापूर्वक प्रमाद नहीं करना चाहिये।' पुनः अगले श्लोक में—

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयामसो ब्राह्मणाः। तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया भिया देयम्। संविदा देयम्।[5]

इसका भावार्थ है— 'तुम माता और पिता में देवबुद्धि यानि देवस्वरूप समझने वाले बनो।आचार्य को देवस्वरूप और अतिथि को देवतुल्य समझने वाले बनो। जो-जो निर्दोष कर्म हैं; उन्हीं का सेवन करना चाहिये। दूसरे जो दोषयुक्त कर्म हैं उनका आचरण कभी भी नहीं करना चाहिये। हमारे जो-जो अच्छे आचरण हैं उनका ही तुम्हें सेवन करना चाहिये। जो कोई भी हमसे श्रेष्ठ (गुरुजन, ब्राह्मण) हैं, उनको तुम्हें आसनादि के द्वारा सेवा करनी चाहिये, उन्हें विश्राम दें, श्रद्धापूर्वक दान दें; बिना श्रद्धा के दान नहीं देना चाहिये। किन्तु आर्थिक स्थिति के अनुसार ही देना चाहिये। लज्जा से दे, भय से दे या जो कुछ भी दिया जाय, वह सब विवेकपूर्वक देना चाहिये।' श्रुति कथन है— जन्मदाता, उपनयन देने वाला, विद्या प्रदान करने वाला, अन्नदाता और भय से रक्षा करने वाला —इन पाँच व्यक्तियों को पिता की श्रेणी में परिगणना होती है। मनुस्मृति का कथन है— दस उपाध्यायों में एक आचार्य, सौ आचार्यों में एक पिता और हजार पिताओं में एक माता गौरव में बड़ी है।

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥[6]

माता-पिता ने जो सेवा, वात्सल्य हमपर लुटाया है, इसका बदला हम उन्हें सात जन्मों में भी नहीं लौटा पायेंगे। लेकिन जब वही माता-पिता वृद्ध हो जाते हैं, तब आज के आधुनिक युवा दम्पति उन्हें अपने ऊपर बोझ समझने लग जाते हैं। एक मातापिता अपने बच्चों को पोषण दिया, पढ़ाया-लिखाया, उन्हें अपने पैरों पर

3 पद्मपुराण सृष्टिखण्ड, 47.9
4 पद्मपुराण सृष्टिखण्ड, 47.8
5 तैत्तिरीय उपनिषद्, 1.11
6 मनुस्मृति 2.145

खड़ा किया, उनको रहने के लिये घर-आवास की सुविधाएँ दी, सुख-दुःख में छात्रछाया बनकर खुद उनके दुःख-दर्द को अपने ऊपर झेला। वही आज के युवा अपने वृद्ध माता-पिता को स्वयं ही वृद्धाश्रम में पहुँचा कर इस सेवा-दायित्व से मुक्त होने में नहीं कतराते। कुछ लोग तो अपने माता-पिता को वृद्धावस्था में गृहत्याग करके कहीं चले जाने को भी कह देते हैं, वे कहाँ रहेंगे, कैसे जीवन बसर करेंगे —इसकी चिन्ता उन्हें कतई नहीं। जो माता-पिता अपने एकाधिक बच्चों को पाला-पोसा, वे सभी मिलकर भी अपने माता-पिता को साथ रखने में कतराने लगते हैं। माता-पिता तो सबसे उत्तम देवमन्दिर के जीवित विग्रह के समान हैं। मनुष्य के स्वयं की उत्पत्ति का मूल उसका पिता-माता ही होते हैं, जो जन्मदाता होते हैं; वे भगवत्-सदृश होते हैं। पालनकर्ता पिता होने के कारण वह पिता प्रजापतिरूप में ईश्वरमूर्ति ही हैं। जो मातापिता की सेवा और आज्ञापालन न कर उनके विपरीत आचरण करते हैं, उनकी लोकनिन्दा ही होती है।

नीति वाक्य है— पिता के द्वारा डाँटा गया पुत्र, गुरु के द्वारा शिक्षित किया गया शिष्य और सुनार के हथौड़े से पीटा गया स्वर्ण— ये सभी आभूषण बनते हैं या लोकसम्मानित होते हैं। पौराणिक एवं आधुनिक इतिहास में ऐसे लोगों के कुकृत्य भरे पड़े हैं, जिन्होंने अपने जीवित पिता को कैदखाने में डालकर स्वयं राजसत्ता हथिया ली उदाहरण— कंस, कोई अपने पिता की हत्या कर कलंक की कालिमा लेकर सम्राट बन बैठा उदाहरण— अधिकांश मुग़ल शासक। ऐसे कथानक से हमें सीख लेनी चाहिये, क्योंकि ये घटनाएँ हमें शिक्षित भी करते हैं। वहीं हमारे बीच श्रवणकुमार की कथाएँ भी प्रचलित हैं, जिन्होंने अपने वृद्ध एवं ज्ञानचक्षु मातापिता को अपने कंधे पर बिठाकर तीर्थयात्रा करवाते हुए आदर्श मातृ-पितृ भक्ति का ध्वजवाहक बन बैठा, जिसके कारण श्रवणकुमार की कीर्ति आज भी विख्यात है।

श्रीराम की पितृभक्ति

लोकहित के लिये मर्यादावतार लेने वाले श्रीरामचन्द्रजी ने अपनी माता कैकेयी का कहना मानकर पिता को आदर्श मानकर मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में लोक वन्दित हुए। धर्म के पालन से मृत्यु का वरण कर लेने वाला पुण्यभागी होता है। श्रीराम का अपने पिता राजा दशरथ के प्रति कथन है—

अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके॥
क्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।[7]

न ह्यतो धर्मचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया॥[8]

'मैं महाराज के कहने पर अग्नि में कूद सकता हूँ, तीव्र विष का पान भी कर सकता हूँ, समुद्र में भी गिर सकता हूँ। क्योंकि जैसी पिता की सेवा और उनकी आज्ञा का पालन करना है, इससे बढ़कर संसार में कोई धर्म नहीं है।' पुनः अपनी माता कौसल्या से भी कहते है —

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम्॥[9]

'मैं आपके चरणों में अपना मस्तक रखकर आपसे प्रसन्न होने की प्रार्थना करता हूं कि मुझमें पिता के वचन टालने की शक्ति नहीं है। अतः मैं वन को जाना चाहता हूँ।' श्रीराम ने लोककल्याण के लिये वनगमन कर मातृ-पितृभक्ति का अनुपम और अनुकरणीय उदाहरण बनकर लोकशिक्षण किया। ऐसे उत्कृष्ट उदाहरण हमें बार-बार सोचने को विवश कर देते हैं कि श्रीराम ने इन विकट स्थिति का सामना

7 वाल्मीकि रामायण 2.18.28-29, गीताप्रेस संस्करण
8 वाल्मीकि रामायण 2.19.22, उपरिवत्
9 वाल्मीकि-रामायण 2.21.30, उपरिवत्

कितनी आसानी से द्वेष एवं इर्ष्यारहित होकर, नम्र बनकर किया। श्रीराम के जीवन प्रसंग के अनेक सुकृत सबों के लिये युगों-युगों तक अनुकरणीय रहेंगे।

नचिकेता की पितृभक्ति

सामान्यत: नचिकेतस् का शब्दार्थ— अग्नि (विशेषण) के रूप में होता है। कठोपनिषद् के शांकर भाष्य में आचार्य शंकर ने यम और नचिकेता को समानरूप से भक्तिमय होकर प्रणाम निवेदन किया है—

ॐ नमो भगवते वैवस्वताय मृत्यवे ब्रह्मविद्या-चार्याय नचिकेतसे च।

कठोपनिषद् का आरम्भ एक प्रसिद्ध कथानक से होता है; जब यज्ञफल के इच्छुक वाजश्रवा के पुत्र वाजश्रवस (उद्दालक) ने विश्वजित्-यज्ञ में अपना सारा धन ब्राह्मणों को दे दिया। इन्हीं का एक पुत्र था— नचिकेता। इस यज्ञ में दक्षिणास्वरूप जब गाएँ दी जा रही थी, तब उनमें ऐसी भी गौएँ थी जो जराजीर्ण थी। तभी इस छोटे बालक नचिकेता में आस्तिक्यबुद्धि का आवेश प्रवेश कर गयी और अपने पिता के प्रति विचार करने लगा— जो गौएँ अन्तिम बार जल पी चुकी है, जिन्होंने घास खाना छोड़ दिया है, जिसका दूध अन्तिम बार दुह लिया गया, जिनकी इन्द्रियाँ नष्ट (प्रजननशक्ति का ह्रास) हो गयी हैं, ऐसे गौओं को दान करने वाला दाता आनन्दशून्य लोक को जाता है। धर्मानुसार नचिकेता अपने पिता को इस अनिष्टकारी परिणाम से बचाना चाहता था। इसी निश्चय से अपने पिता से कहा —हे तात! मैं भी तो आपका धन हूँ, आप मुझे किसको देंगे ? इस प्रकार दुबारा-तिबारा कहने पर ऋषि पिता को क्रोध आ गया और आवेशित होकर कहा—

तम् होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति।[10]

जाओ ! मैं तुझे मृत्यु (सूर्यपुत्र) को देता हूँ।

अब नचिकेता अपने पिता के आज्ञानुसार यमलोक को प्रस्थान कर यमदेव के घर तीन रात्रि तक टिककर इनकी प्रतीक्षा करता रहा।

अपने प्रवास से लौटने पर यमदेव ने उस ब्राह्मण-बालक नचिकेता का यथोचित सत्कार भी किया और कहा— हे ब्राह्मण! आपने मेरे घर तीन रात्रि तक बिना भोजन किये मेरी प्रतीक्षा करते रहे, अत: एक-एक रात्रि के लिये आप मुझसे तीन वर माँग लें।

नचिकेता तीन वरों में से पहला माँगता है— हे मृत्यो! जिससे मेरे पिता वाजश्रवस मेरे प्रति शान्त, प्रसन्नचित्त और क्रोधरहित हो जाँय और मुझसे पहले के जैसा ही स्नेह दें।

इसके बाद द्वितीय वर में स्वर्गसाधनभूत अग्निविद्या का रहस्य जानने एवं तृतीय वर के रूप में आत्मरहस्य (आत्मज्ञान) को जानने की जिज्ञासा की। इसने अग्निविद्या और आत्मरहस्य नामक दोनों विद्याओं को तत्त्वत: जानकार वापस अपने पिता के पास आया। इस प्रकार नचिकेता अध्यात्म के पृष्ठ पर पितृभक्ति के उदाहरण के रूप में सदा के लिये अंकित हो गया।

मातृ-पितृ सेवक भक्त पुण्डरीक

माता-पिता के परमसेवक भक्त पुण्डरीक अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा में लगे ही रहते थे। जब ये अपने माता-पिता की सेवाकार्य में लगे ही थे कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्त पुण्डरीक को दर्शन देने के लिये दरवाजे पर खड़े हो गये और पुण्डरीक को अपने पास बुलाने लगे। पुण्डरीक ने कहा— प्रभो ! मैं इस ईंट को सरकाये दे रहा हूँ, उसी पर आप खड़े हो जाँय, मैं तो अभी आ नहीं पाऊँगा क्योंकि मैं अभी मातापिता की सेवा कर रहा हूँ। भगवान् तो सर्वदर्शी हैं, पुण्डरीक के इस सेवाकार्य को देखकर भगवान् प्रसन्न हो गये। इधर भगवान् दरवाजे पर ईंट पर खड़े हुए

10 कठोपनिषद् 1.1.4.

अपने दोनों हाथों को कमर पर रखे हुए प्रतीक्षारत थे कि कब पुण्डरीक आये। मातापिता की सेवा के पश्चात् पुण्डरीक भगवान् के पहुँचे, तभी पुण्डरीक पर प्रसन्न होते हुए वरदान माँगने को कहा, पुण्डरीक ने कहा— प्रभो! आप सदा इसी स्थान पर इसी मुद्रा में विराजें। तब से प्रभु भगवान् विट्ठल के श्रीविग्रह रूप में विराजमान हैं।महाराष्ट्र के भीमानदी (चन्द्रभागा) के पास पण्डरपुर (या पंढरपुर) में भगवान् श्रीविष्णु की मूर्ति विट्ठलेश के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान् विट्ठलेश अपने कमर पर दोनों हाथ रखे खड़े हैं। साथ में श्रीरखुमाई (रुक्मिणीजी) का भी मन्दिर है। अतः इस धाम के प्रतिष्ठाता भक्त पुण्डरीक हैं। इसी मन्दिर में चोखामेला की समाधि, नामदेवजी की समाधि एवं द्वारका के एक और भक्त अखाभक्त की मूर्ति है।

महात्मा मूक की सेवा

ऋषि पुलस्त्य का कथन है— माता सर्वतीर्थमयी और पिता सम्पूर्ण देवताओं के प्रतीक हैं। इनकी सेवा से समस्त धर्मफल और तीर्थफल की प्राप्ति होती है। यदि कोई माता-पिता की सेवा को छोड़कर देवसेवा या तीर्थसेवन करने जाय, तो वह निष्फल माना जाता है।

इस संदर्भ में एक कथा है— पूर्वकाल में नरोत्तम नाम का एक ब्राह्मण था। यह खान-पान, धर्म-कर्म आदि में नियन्त्रण कर जीवन-निर्वाह कर रहा था। अपने पुण्य -प्रभाव से उसके कपड़े आकाश में ही अपने आप सूखा करते थे। इससे उसमें थोड़ा अहंभाव आ चला था कि मेरे समान कोई तपस्वी नहीं।

एकबार अपने माता-पिता की सेवा को छोड़ तीर्थाटन करने चला। एक दिन रास्ते में चलते समय एक बगुले से नरोत्तम के ऊपर बीट कर दी, जिससे नरोत्तम क्रोधित होकर बगुले को शाप दे दिया, जिससे बगुले मृत्यु हो गयी। अब नरोत्तम स्वयं को महान् समझने लगा।

तभी आकाशवाणी हुई— तुम महात्मा मूक नामक चाण्डाल के पास जाकर मिलो। मूक के घर जाकर नरोत्तम देखता है कि मूक का घर बिना भित्ति के भी आकाश में टीका हुआ है। वह अपने माता-पिता की सेवा में व्यस्त था। नरोत्तम ने मूक से कहा— तुम मेरे पास आकर मेरे हित की बात करो। मूक ने कहा— आप मेरे अतिथि हैं, आपका स्वागत करूँगा, लेकिन अपने माता-पिता की सेवा करने के बाद। नरोत्तम को क्रोध आ गया और कहा— ब्राह्मण-सेवा से बढ़कर और कौन सेवा हो सकती है? इसलिये मेरी उपेक्षा करोगे तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगा। मूक ने कहा— मैं बगुला नहीं, जो आप मुझे शाप देकर भस्म कर देंगे। आप आकाशवाणी सुनकर मेरे पास आये हैं। यह सुनकर नरोत्तम को ज्ञान हो गया कि माता-पिता की सेवा से ही अपना उद्धार सम्भव है। यह कथा पद्मपुराण से सम्बन्धित है।

गणेशजी की मातृपितृभक्ति

श्रीशिवपुराण[11] का आख्यान है, एकबार भगवान् शिव और भगवती शिवा अपने दोनों प्रियपुत्र षण्मुख और गणेश के विवाह के लिये एक अद्भुत युक्ति रची। दोनों को बुलाकर कहा— तुमदोनों समान भाव से मेरे प्रिय हो, तुम दोनों में से जो कोई भी सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा कर पहले आयेगा, उसीका विवाह पहले किया जायेगा।

दोनों ही विवाह के लिये लालायित थे। महाबली कार्तिकेय तो शीघ्रता से परिक्रमा को निकल गये, किन्तु गणेशजी क्या करें?— यह सोचने लगे।

गणेशजी ने अपने माता-पिता को एक आसन पर बिठाया, विधिवत् पूजन की और सातबार परिक्रमा कर सात बार प्रणाम किया एवं स्तुति भी की और कहा-

11 शिव पुराण, रूद्रसंहिता, कुमारखण्ड,19

मेरी धर्मसम्मत बाते सुनें; मैंने सात बार पृथ्वी की परिक्रमा कर डाली है। भगवान् ने कहा- तुम तो गये ही नहीं और कह रहे हो, सात बार परिक्रमा कर डाली! तब गणेशजी कहते है-

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रांन्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यं फलं भवति निश्चितम्॥
अपाह्य गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत्।
तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा॥
पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम्।
अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः॥
इदं संनिहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम्।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम्॥[12]

अर्थात् 'जो माता-पिता का पूजन कर परिक्रमा कर लेता है, उसे पृथ्वी की परिक्रमा करने का फल निश्चित रूप से प्राप्त हो जाता है। जो माता-पिता को छोड़कर तीर्थस्थान को जाता है, उसे लिये वह पाप के बराबर है, जो उनदोनों का वध करने से लगता है। माता-पिता का चरण-कमल ही पुत्र के लिये महान् तीर्थ हैं, अन्य तीर्थ तो दूर जाने पर प्राप्त होते हैं। यह तीर्थ सन्निकट रहने वाला है, सभी प्रकार से सुलभ और धर्मों का साधन है। पुत्र के लिये माता-पिता और स्त्री के लिये पति ही घर में सर्वोत्तम तीर्थ है।'

यह सुनकर भगवान् शिव एवं देवी शिवा ने कहा- जिसके पास बुद्धि है उसी के पास बल भी है। तुमने सम्यक प्रकार से धर्मपालन किया है, तुम्हारी बातें हमदोनों ने विचार कर मान ली है। ऐसा कहकर गणेशजी के विवाह के लिये विचार करने लगे।

इस प्रकार हमारे ग्रन्थों में ही नहीं बल्कि आज भी व्यावहारिक रूप में भी ऐसे मातृ-पितृसेवी मिलते रहते हैं। उपर्युक्त उदाहरण तो मात्र अनुकरणीय संकेतक हैं। विस्तारभय के कारण संकेतरूप में यह जानना चाहिये कि मार्कण्डेय पुराण में महाभाग रुचिकृत 'पितृस्तुति', गरुड़पुराण के आचारखण्ड में अध्याय-89 में 'पितृस्तुति एवं इसका माहात्म्य', ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 15 वें सूक्त की 1-14 तक की ऋचाएँ 'पितृ-सूक्त' के नाम से जानी जाती है।

***

12 शिवपुराण, रुद्रसंहिता 19.39-42

आसाम की अहोम जनजाति प्रत्येक वर्ष 31 जनवरी को अपने पितरों की स्मृति में मे-डैम-मे-फी मनाते हैं।

स्रोत : https://www.sentinelassam.com/north-east-india-news/assam-news/me-dam-me-phi-to-be-celebrated-all-over-assam-on-january-31-522396

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में विज्ञान

श्री संजय गोस्वामी

लेखन के क्षेत्र में 1500 से अधिक लेख विभिन्न विज्ञान तथा हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए उन्हें कई सम्मान 'भारत गौरव, 2011', भक्तिकाव्य श्री 2007, डॉ गोरख प्रसाद विज्ञान पुरस्कार, 2009, विज्ञान परिषद शताब्दी पुरस्कार 2013, डॉ सीवी रमन विज्ञान संचार पुरस्कार, 2015, एन.एफ.एम.आई. 2021 अवार्ड आदि प्राप्त हैं।

संप्रति : हिमालय व हिंदुस्तान के संरक्षक सदस्य, ग्रामीण विकास संदेश, सोसाइटी ऑफ बायोलॉजिकल साइंस एंड रूरल डेवलपमेंट के सह संपादक, तथा विज्ञान गंगा पत्रिका,(बीएचयू)., सलाहकार बोर्ड के सदस्य हैं

यमुना जी/13, अणुशक्तिनगर, मुंबई-94, ई मेल -sr44000791@gmail.com

इस पूरे अंक में पितर औऱ श्राद्ध की अवधारणा पर लेख संकलित हैं। स्वर्गलोक, मोक्ष, पितृलोक हैं या नहीं, इस विषय पर अनेक मतवाद भारत में उपस्थापित किए गये हैं। किस कार्य के लिए क्या समय सीमा निर्धारित है यह भी विमर्श का एक विषय है। अक्सर हम आधुनिक चकाचौंध में अपनी परम्परा पर ही उँगली उठाने लगते हैं और पुरोहितवाद ब्राह्मणवाद का नारा देकर उन्हें नकारना सबसे सुलभ हो जाता है। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत में वैदिक साहित्य में जो कुछ है या उसी परम्परा में आगे भी जो खोज की गयी है, उनमें वैज्ञानिकता है। हम प्राचीन काल में समृद्ध थे औऱ उसी समृद्धता की स्थिति में हमने परम्परा चलायी, जो आज तक है। इसलिए तो मनु ने श्रुति, स्मृति, सदाचार तथा आत्मप्रिय- इन चारों को धर्म का लक्षण माना। हमें किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व एकबार परम्पराओं का दर्शन करना होगा।

प्राचीन भारत का ज़िक्र आते ही मन इतिहास में गोते लगाता है और बचपन में स्कूलों में पढ़ा हुआ पूर्व-पाषाण काल (Palaeolithic age), उत्तर-पाषाण काल (Neolithic age), सिंधु घाटी सभ्यता (Indus valley civilisation) इत्यादि याद आने लगता है। विषय को देखकर यह जरूर समझ में आता है कि बात प्राचीन भारत से शुरू करनी है परन्तु अनायास ही एक प्रश्न मन में उठता है कि कितना प्राचीन? बहरहाल, इस प्रश्न को ज्यादा महत्त्व इसलिए नहीं देना चाहता क्योंकि मुख्य विषय 'विज्ञान व ऊर्जा के आयाम'है और प्राचीनता व आधुनिकता की तो केवल तुलना प्रस्तुत करनी है। इसलिए, भारत के उस दौर से बात शुरू करना चाहता हूँ जो हर भारतवासी के दिल में है, चाहे वो पढ़ा-लिखा है या नहीं।

भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का एक बहुत बड़ा आधार रहा है यह दौर। साथ ही, विज्ञान की असीमित

संभावनाओं व शक्तियों का अंदाजा भी इस दौर में देखने को मिलता है।

प्राचीन कृषि-विज्ञान

प्राचीन भारतीय विज्ञान को दरकिनार करके आधुनिक प्रौद्योगिकी का सपना अधूरा है। प्राचीन भारतीय साहित्य का प्रमाण स्पष्ट करता है कि भारतीय ऋषि-मुनी तथा आध्यात्मिक रूप से सक्षम व्यक्तियों द्वारा हजारो वर्ष पूर्व विज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया गया है जिसका प्रमाण धार्मिक ग्रंथों में उपलब्ध है। इस प्रगति की जानकारी हमे पुरातात्त्विक खोजों तथा पराशर व सुरपाल-जैसे विद्वान् वैज्ञानिकों द्वारा कृषि पर लिखे ग्रंथो से मिलती है। वर्षा के मापन तथा उनकी भविष्यवाणी के तरीकों सहित कृषि पंचाग आदि के बारे में जानकारी दी गई है।

नौ-चालन का प्राचीन ज्ञान

वैदिक काल के भारतीयों को नौचालन एवं जहाज निर्माण का अच्छा ज्ञान था। उनका समुद्र के देवता वरुण में अगाध विष्वास था। ऋग्वेद में समुद्र, सप्तसिंधु, पूर्व समुद्र, पश्चिम समुद्र आदि शब्दों का अत्यधिक उपयोग हुआ है।

उन्नत धातुविज्ञान

सन् 370 ई. में निर्मित दिल्ली, धार, तथा कोडचदरी लौह-स्तंभों का वर्णन भारतीय कारीगारों के कौशल के प्रमाण हैं। लगभग 1600 वर्ष के पश्चात् भी दिल्ली लौह जंगरहित है। इससे प्रमाणित होता है कि प्राचिन भारतीयों की प्रौद्योगिकी बहुत उन्नत एवं विकसित थी। उनके द्वारा सिद्ध किये गये उर्जा का आविष्कार, पहिए से लेकर शून्य से लेकर 1 से 9 तक के अंकों के आविष्कार के बगैर आधुनिक प्रौद्योगिकी का उद्भव संभव नही है। इसलिये प्राचीन प्रौद्योगिकी के बगैर आज का विज्ञान अधूरा है। विज्ञान जितनी चाहे उतनी नई-नई खोज कर ले, लेकिन भारतीय विज्ञान का प्राचीन स्वरूप इसके इर्द-गिर्द समाहित है। भारत के उत्कृष्ट वैज्ञानिक ज्ञान के प्राचीनतम उपलब्ध स्रोत वेद हैं एवं वैदिक ऋषि ही भारत के प्रथम वैज्ञानिक थे। उनकी यज्ञशालाएँ ही प्रारम्भिक प्रयोगशालायें थीं। उपनिषद् काल तक यह विज्ञान राशि विभिन्न शाखाओं में वर्गीकृत हो चुकी थी। यथा– गणित, ज्योतिष, पदार्थ विज्ञान, सैन्य विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान व जीव विज्ञान आदि।

भारत में सिंधु घाटी के लोग सुनियोजित ढंग से नगर बसा कर रहने लगे थे। उस समय तक भवन-निर्माण, धातु-विज्ञान, वस्त्र-निर्माण, परिवहन-व्यवस्था आदि उन्नत दशा में विकसित हो चुके थे। फिर आर्यों के साथ भारत में विज्ञान की परंपरा और भी विकसित हो गई। इस काल में गणित, ज्योतिष, रसायन, खगोल, चिकित्सा, धातु आदि क्षेत्रों में विज्ञान ने खूब उन्नति की जिनके कुछ उदाहरण यहाँ पर दिए गए हैं ।

समय का महत्व

समय है तो जीवन है, अगर समय नहीं है तो जीवन भी नहीं है। सबसे पहले हम समय के बारे में संक्षिप्त रूप से जानते हैं। समय को तीन स्थानिक आयामों (लंबाई, चौड़ाई और गहराई) के साथ चौथे आयाम के रूप में जाना जाता है। समय को घटनाओं की अवधि या उनके बीच अन्तराल की तुलना करने के लिए, और वास्तविकता में या जागरूक अनुभव में मात्राओं में परिवर्तन की दरों को मापने के लिए तथा घटनाओं को अनुक्रमित करने के लिए एक घटक मात्रा के रूप में उपयोग किया जाता है।

सारा ब्रह्मांड ईथर के वातावरण में तैर रहा है। आज विज्ञान समय को समझने में असक्षम है। जैसे आप कभी स्पप्न देखते हैं और उसमें वर्षों पूर्व के बुजुर्ग आपको कभी सपने में आते हों, जबकि उनकी मृत्यु हुए 30-40 वर्ष हो गए, फिर भी कभी कोई अनजान घटना घटती है तो स्वप्न के माध्यम से इशारा मिल जाता है।

इसका तात्पर्य यह हुआ, समय नापने का जो तरीका इस पृथ्वी पर है, वही मृत्यु के पश्चात् भी चलेगा, ऐसा नहीं है, इसलिए पितरों के लिए श्राद्ध की वैदिक अवधारण वैज्ञानिक रूप से सही साबित होती है आदमी कभी मरता नहीं है केवल पंचतत्त्व का बना शरीर का अन्त होता है और आत्मा अन्तरिक्ष में सूक्ष्म रूप में विचरण करती है। सौर मंडल के प्रभाव क्षेत्र के बाहर शून्य (स्पेस) में समय जैसी कोई चीज नहीं है।सब अनन्त, अनादि में स्थिर है, जिसका कोई अन्त नहीं है। यहाँ समय बिल्कुल स्थिर है।

न्यूटन ने अपनी किताब 'फिलॉसॉफी नेचुरलिस प्रिंसिपिया मैथमैटिका' में ने पूर्ण समय और स्थान (आबसैल्यूट टाइम ऐंड स्पेस) की अवधारणओं को सैद्धांतिक आधार प्रदान किया जो न्यूटनियन यांत्रिकी की संरचना में मददगार साबित हुआ। समय नापने का जो तरीका इस पृथ्वी पर है, वही मृत्यु के पश्चात् भी चलेगा, ऐसा नहीं है। सौर-मंडल के प्रभाव क्षेत्र से बाहर शून्य (स्पेस) में यह पैमाना लागू नहीं है। वहाँ समय जैसी कोई चीज नहीं है। सब अनन्त, अनादि में स्थिर है, जिसका कोई अन्त नहीं है। यहाँ समय बिल्कुल स्थिर है, यदि ग्रहों की गति घूम जाए तो समय भी घूम जाएगा। लेकिन ग्रहों की गति कौन घुमा सकता है। इसलिए आइंस्टाइन ने ईश्वर को माना था। कोई तो ऐसी विराट् शक्ति है, जो पृथ्वी और ग्रहों को घुमा रहा है। समय को कुछ स्पष्ट रूप से इस प्रकार समझा जा सकता है। आइंस्टाइन के अनुसार आप किसी ऐसे अन्तरिक्ष यान में यात्रा करें, जिसकी रफ्तार प्रकाश के वेग के बराबर, अर्थात् 1 लाख इक्यासी हजार मील प्रति सेकेंड हो तो उसमें समय पलक झपकते ही समाप्त हो जाएगा।

समय के अन्तरावलोकन का कुछ समय पृथ्वी के दो युगों में बाँटने से मालूम पड़ता है। जहाँ पृथ्वी दो युगों की है त्रेता और द्वापर युग, जो क्रमशः 12 लाख 96 हजार और 8 लाख 64 हजार वर्ष के थे। इससे यह जाहिर होता है कि समय का अन्तराल का ज्ञान भारत के वैश्विक पुरुष को पहले हो जाता था।

काक-भुशुण्डी कथा में (वाल्मीकि रामायण) समय के अन्तराल पर बढ़िया प्रसंग है। जब काकभुशुण्डी राम के मुख में समा जाते हैं तो वहाँ उन्हें सौ कल्प लग गए। इन समय में अनेक ग्रह, नक्षत्र के दर्शन हुए। जब मुख के बाहर आते हैं तो पता चलता है कि पृथ्वी पर केवल दो घड़ी ही बीती है। दो घड़ी अर्थात् 45 मिनट। यहाँ सौ कल्प का अनुमान 4300 करोड़ वर्षों के बराबर। कहने का मतलब यह है, जब शरीर को सूक्ष्म किया और मुख में अर्थात दूसरे ग्रह की सैर कर रहे हैं तो समय काफी व्यतीत हो रहा है। वहीं अपने असली रूप मे पृथ्वी पर रहने पर समय का अन्तर खुद ही छोटा हो गया। यहाँ समय के सापेक्षवाद सिद्धान्त का उल्टा है। अन्तरिक्षयान में पृथ्वी की तुलना में समय का अन्तराल बहुत कम होता है। जबकि कथा के अनुसार पृथ्वी में समय कम लगता है, किसी अन्य ग्रह की तुलना में। लेकिन इसे गहराई से लें तो बात वही निकलती है। जैसे मुख पृथ्वी की तुलना में काफी छोटा है और जब मुख के अंदर जा रहे हैं, तब समय वहाँ जो व्यतीत हो रहा, वह घटना के समय अधिक लग रहा होगा। हो सकता है इन कथा में अतिशयोक्ति या कपोल कल्पना हो, लेकिन यह समय के सापेक्षवाद सिद्धान्त को एक चुनौती दे रहा है जिसे आइंस्टाइन ने 1905 में दिया था।

इसी कथा में ये भी आता है कि जब राजा रैवत किसी ऐसे विमान में बैठकर वैकुण्ठधाम गए थे, जिसकी रफ्तार बहुत अधिक थी। जिसके कारण वैकुण्ठधाम में अतिशीघ्र पहुँच गए। अर्थात् आकाश में अन्तरिक्ष यान में सवार होने पर समय बहुत कम व्यतीत हो रहा है, जो सापेक्षवाद सिद्धान्त को समर्थन करता है।

जैन धर्म के अनुसार एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न रूप में देखा जाता है। हिन्दू धर्म में भी एक ईश्वर के अनेक अवतार हैं। यहाँ तात्पर्य यह है कि समय को जो ईथर से संबंधित है, को भिन्न-भिन्न जगह, भिन्न तरीके से मापा जाता है। गूढ़ अध्ययन से ही काल गणना के भारतीय इतिहास को समझा जा सकता है। समय जिसे काल कहते हैं का सम्बन्ध इन्दियों से है, जो दिमाग में घटना के आधार पर प्रमाण प्रस्तुत करता है। समय सापेक्ष है, जिसका ब्रह्मांड से सम्बन्ध है। कोई घटना ब्रह्मांड में घटती है तो समय के साथ होता है, इसके लिए ग्रह जिम्मेदार। यह ग्रह सूर्य के कारण, जो बहुत पहले भारत के ऋषि-मुनियों ने सूर्य को काल का कारण बतलाया।

आइंस्टीन के सापेक्षता के सामान्य सिद्धान्त में, गुरुत्वाकर्षण को स्पेसटाइम के वक्रता के परिणामस्वरूप एक घटना के रूप में माना जाता है। यह वक्रता द्रव्यमान की उपस्थिति के कारण होती है। आम तौर पर, अन्तरिक्ष के किसी भी मात्रा में निहित अधिक द्रव्यमान, स्पेस-टाइम की वक्रता उसी मात्रा में ज़्यादा होगी। स्पेस-टाइम में वस्तुओं की बदलती स्थानों की तरह, वक्रता उन वस्तुओं के बदले गए स्थानों को प्रतिबिंबित करने के लिए बदलती है। यह भी बहुत पहले मैत्रायणी उपनिषद में आया है। जिसके अनुसार जो सिन्धु के समय आकाश है, वहाँ सविता स्थित है, जिनसे ग्रह, नक्षत्र और संवत्सरादि उत्पन्न होते हैं। ये सब काल के कारण वशीभूत हैं। अर्थात् काल से ही सभी प्राणी जो दिनचयाृ कर रहे हैं, उनकी वृद्धि और अन्त का कारण ग्रह है, जो मूर्तिमान है।

पृथ्वी विज्ञान

आर्यभट्ट एवं आर्यभटीय (499 ईस्वी) की पृथ्वी के भूगोल एवं स्व-अक्ष पर घूर्णन सम्बन्धित मान्यताएँ हैं, परन्तु, दरबारी मानसिकता में रमे अंग्रेजी भाषा आधारित आधुनिक भारतीय शिक्षण संस्थानों के विद्यार्थियों को इस खोज का जनक कोपरनिकस ही बताया गया। यही सिलसिला भारत के स्वतंत्र होने के बाद भी बना रहा। स्मरण रहे, आर्यभट्ट, कोपरनिकस के जीवन काल से पूरे 1000 वर्ष पहले, इस धरती पर आ चुके थे।

चक्राणासः परीणहं पृथिव्या
हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि
स्पशो अदधात्सूर्येण ॥8॥

-ऋग्वेद1-33-8

मंत्र से स्पष्ट है कि पृथ्वी गोल है तथा सूर्य के आकर्षण पर ठहरी है। शतपथ में जो परिमण्डल रूप है वह भी पृथ्वी कि गोलाकार आकृति का प्रतीक है।

भास्कराचार्य जी ने भी पृथ्वी के गोल होने व इसमें आकर्षण (चुम्बकीय) शक्ति होने जैसे सभी सिद्धान्त वेदाध्ययन के आधार पर ही अपनी पुस्तक सिद्धान्त शिरोमणि (गोलाध्याय व 4-4) में प्रतिपादित किये।

काँसे से बना प्राचीन भारतीय खगोल

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥

— यजुर्वेद 3.6

मन्त्र से स्पष्ट होता है कि पृथ्वी जल सहित सूर्य के चारों ओर घूमती जाती है।

भला आर्यों को गँवार कहने वाले स्वयं जंगली ही हो सकते है। ग्रह-परिचालन सिद्धान्त को महाज्ञानी ही लिख सकते है।

वेद सूर्य को वृघ्न कहते है अर्थात पृथ्वी से सैकड़ो गुणा बड़ा व करोड़ो कोस दूर। क्या ग्वार जाति यह सब विज्ञान के गूढ रहस्य जान सकती है?

दिवि सोमो अधिश्रित *-अथर्ववेद 14-9-9*

जिस तरह चन्द्रलोक सूर्य से प्रकाशित होता है,

उसी तरह पृथ्वी भी सूर्य से प्रकाशित होती है।

एको अश्वो वहति सप्तनामा। *-ऋग्वेद 1-164-2*

सूर्य की सात किरणों का ज्ञान ऋग्वेद के इसी मंत्र से संसार को ज्ञात हुआ ।

अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मय:।

— अथर्ववेद 17-10-17-9

सूर्य की सात किरणें दिन को उत्पन्न करती है। सूर्य के अंदर काले धब्बे होते है।

यं वै सूर्य स्वर्भानु स्तमसा विध्यदासुर: ।
अत्रय स्तमन्वविन्दन्न हयन्ये अशक्नुन ॥

— ऋग्वेद 5-40-9

अर्थात् जब चंद्रमा पृथ्वी ओर सूर्य के बीच में आ जाता है तो सूर्य पूरी तरह से स्पष्ट दिखाई नहीं देता। चंद्रमा द्वारा सूर्य को अंधकार में घेरना ही सूर्यग्रहण है ।

अत: स्पष्ट है कि आर्यों को सूर्य-चन्द्रग्रहण के वैज्ञानिक कारणों का परिज्ञान था तथा पृथ्वी की परिधि का भी ठीक-ठीक ज्ञान था।

मात्रक की खोज

प्राचीन भारतीय विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में संसार की उत्पत्ति से लेकर वर्तमान के परिदृष्य को संख्यात्मक रूप से सक्षम बनाने में भारतीय संस्कृत वांगमय एवं भारत का प्रमुख योगदान है। इस धरती पर बैठकर हम जितनी बड़ी दुनिया को देख समझ व सुन सकते हैं, उतनी ही बड़ी एक और दुनिया हे, और वह है संख्याओं की दुनिया विष्व के प्राचीनतम ग्रंथ यजुर्वेद में यज्ञ वेदी की संख्या कुल ईटों की संख्या तथा उतनी ही गायों की प्रार्थित संख्या को प्रकट करने के लिए एक से प्रारम्भ करके सबसे बड़ी संख्या प्रार्थ का उपयोग किया गया है। जो कि 10^{12} के समतुल्य हैं। पर यह संख्याओं की सीमा नही उपलक्षण मात्र है।

सामान्य जीवन में जिन्हें असंख्य या अगण्य समझते है उन्हें भी गिनने के लिए संख्याऐं मोजूद हैं। यदि हमारे पास गिनने का समय सामर्थ्य हों, परन्तु वैज्ञानिकों के एक मोटे अनुमान के अनुसार समुद्र की बूदे 10^{30} से अधिक नही है तथा समुद्र तट के बालू के कणों की संख्या इनमें कई कम है। इन बूंदों की सही-सही संख्या गिनने की जरूरत नहीं है, पर अनेक पदार्थो के माप को गिनने की जरूरत हुई, तो इन्हें संख्या के माध्यम से सही-सही जान लिया गया। जैसे:- सूर्य का द्रव्यमान 10^{30} किलोग्राम तथा इलेक्ट्रान का द्रव्यमान 10^{30} किलोग्राम है।

अन्य शब्दों में मोटे तौर से कह सकते हैं कि यह समुद्र के प्रत्येक बूंद को एक किलोग्राम बजन जितना आकार दिया जाए, तो ऐसी कुल बूदों के समूह के समतुल्य सूर्य का द्रव्यमान होगा तथा एक किलोग्राम पिण्ड को सागर की कुल बूदां जितने अंशों मे विभाजित करनें पर उनमे से केवल एक अंश का मान इलेक्ट्रॉन का द्रव्यमान होगा।

इस प्रकार वस्तु चाहे छोटी से छोटी हो या बड़ी से बड़ी, मिलीमीटर, किलोमीटर, किलोग्राम, से मापी गई हो, सूक्ष्मदर्शी से देखी गई हो या दूरदर्शी से, उन सब का अन्तिम परिमाप संख्या ही तो है। इस दृष्टि से उपनिषदों की तर्ज पर यह संख्या परिमाप का भी परिमाप है तथा मात्रक का भी मात्रक है। यही स्थिति दशमलव पद्यति, बौधायन (Pythagoras) प्रमेय के साथ भी रही. वर्तमान काल में डा. जगदीश चन्द्र बोस के साथ घटी घटना भी इसी तथ्य को उजागर कराती है.

आयुर्विज्ञान

आयुर्विज्ञान का संबंध चारों वेदों के साथ है किंतु अथर्व वेद के साथ इसका घनिष्ट संबंध है। "सुश्रुत संहिता" आयुर्वेद के अथर्व वेद का उपांग बतलाती है।ऋग्वेद का प्रसिद्ध औषधीय सूक्त (10.97) आयुर्विज्ञान अथवा आयुर्वेद इसका उपवेद बतलाने

की अवधारणा करता है। इसके अतिरिक्त अनेकानेक ऐसे उल्लेख है जिसमें आयुर्विज्ञान का वर्णन दृष्टिगत होता है जैसे रसायन के प्रयोग से च्यवन ऋषि को पुर्नयौवन प्राप्त करना, दासों द्वारा नीचे फेक दिए गए दीर्घतमस् ऋषि का शैल्य चिकित्सा के माध्यम से सिर, हृदय का पुन: संधान कर दिया जाना आदि आख्यानों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के विषयुक्त सर्प और विष को नष्ट करने वाली 99 औषधियों का उल्लेख है।

रसायन शास्त्र

रोगरहित दीर्घायुष्य प्रदान करने वाला तंत्र रसायन तंत्र है। हमारे ऋषि महर्षि जो दीर्घ जीवन प्राप्त करते थे, हजारों वर्षों तक निर्जिवित रहते थे। इसका कारण उनका रसायन प्रयोग भी हो सकता है। 'ऋग्वेद' में वृद्धचैवन्य ऋषि को पुन: नवयौवन प्राप्त होना और उनका दीर्घजीवी होना रसायन तंत्र का ही आधार है। 'अथर्ववेद' में भी रसायन तंत्र के संदर्भ में अधिक सामग्री उपलब्ध होती है। अथर्ववेद में रसायन औषधी निम्नलिखित कही गई है जैसे अपमार्ग (सहस्त्रवीर्य), अरुन्धती (सहदेवी सायण के अनुसार) अर्क, मधुजाता, माष, शंखपुष्पी, शतावर, सोम आदि ।

धातु विज्ञान

वैदिक ग्रंथ में खनिज पदार्थ, धातु और मिश्रधातु के उपयोग के बारे में पर्याप्त विवरण मिलता है।

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

(शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता, 18.13)

मैं पत्थर, मिट्टी, पर्वत, गिरी, वालू, वनस्पति, सुवर्ण, ताम्र, त्रपु, सीस और लौह को चाहता हूँ ये सभी यज्ञ से सिद्ध हों। सिंधु और सरस्वती नदी की घाटियों पर तथा अन्य प्राचीन खनन स्थलों से प्राप्त शिल्पकृति लोहकिट्ट पिण्ड इसकी पुष्टि करते है। स्वर्ण, चाँदी, तांबा, वंग, सीस और लोहे का ज्ञान वैदिक हिन्दुओं के पास था।

पदार्थ विज्ञान

पदार्थ क्या है? इस बात का विचार लेकर एक दर्शन बना जिसे वैशेषिक दर्शन कहते है. आचार्य कणाद ने इस संहिता की रचना अथवा संपादन किया है, जिसमें पृथक्ता का गुण परिलक्षित होता है वह पदार्थ है। इसके अनेक प्रकार है

पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव।

(वैशेषिक सूत्र- 1.5)

अर्थात् पृथ्वी (ठोस अवस्था), आप: (जल या द्रव-अवस्था), तेज (ऊर्जा अवस्था), वायु (गैसीय अवस्था), आकाश (वस्तु या पिंड की उपस्थिति से उत्पन्न विभव या बल-क्षेत्र/क्षेत्रों से परिवेष्टित अन्तरिक्षीय भाग), काल (समय), दिक् (दिशा), मन और आत्मा, ये नौ प्रकार के पदार्थ है।

ठोस, द्रव, और गैस अवस्थाओं से तो हम सब परिचित है (वर्तमान विज्ञान सम्मत तथ्य), किन्तु, आकाश (space filled with potential of an object) भी पदार्थ का ही एक रूप है, यह समझ विद्युत और चुंबकीय गुणों की पदार्थ में खोज होने के बाद ही बनी। यहाँ आकाश और अन्तरिक्ष के भेद को भी समझना आवश्यक है. जैसे, किसी वस्तु के भार (जो कि उस वस्तु पर पृथ्वी के गुरुत्वीय बल को दर्शाता है) एवं संहति (mass) में अन्तर होता है, लगभग इसी प्रकार का अन्तर आकाश एवं अन्तरिक्ष में है।

भगवत गीता (अद्याय 13) में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ की चर्चा इस आकाश निर्माण से सीधे ही समझी जा सकती है. याद रहे, सभी प्राचीन साहित्यिक रचनाओं के दैहिक (आद्यात्मिक), दैविक, और भौतिक ऐसे तीन अलग -अलग अर्थ किये जाना सम्भव है., इसी प्रकार से दिशा का ज्ञान सदिश राशियों के लिए अति महत्वपूर्ण विधा है, किन्तु यह पदार्थ का एक रूप भी हो सकता है, यह जानकारी तो वर्तमान विज्ञान में

आइंस्टीन के सापेक्षतावाद के सिद्धान्त द्वारा ही आयी. तेज अर्थात ऊर्जा भी पदार्थ का ही एक प्रकार है, यह तथ्य भी आइंस्टीन के सापेक्षतावाद सिद्धान्त के बाद ही समझ में आया। इसी सिद्धान्त के बाद ही समय और आकाश (space-time) भी पदार्थ को परिभाषित करने एवं प्रभावित करने वाली महत्वपूर्ण राशियाँ है।

ऐसा लगता है, जैसे सूत्र रचनाकार सापेक्षता के सिद्धान्त से भी परिचित रहा होगा, अन्यथा पदार्थ के अतिरिक्त प्रकारों का वर्णन लाना संभव नहीं लगता. यहाँ यह समझ पाना कठिन है कि कैसे उस काल में अनुसंधान-कर्ताओं / आचार्यों ने इन गुणों को सूत्र रूप में एकत्रित करके संहिताओं का निर्माण किया होगा. समग्रता की दृष्टि से मन और आत्मा को भी विचारक (सूत्रकार) ने पदार्थ की श्रेणी में रखा है, आधुनिक विज्ञान में हम इन्हे अबतक पदार्थ की अवस्था नहीं मानते है। संक्षेप में कहें तो मन अपरा-जगत को परा-जगत से जोड़ने वाली कड़ी है. जबकि आत्मा परा प्रकृति का मूल विषय है। परा भौतिकी के विषय होने से हम इनपर यहाँ चर्चा नहीं करेंगे। भगवद्-गीता के अनुसार जो पैदा हुए हैं, वे नष्ट भी होंगे ही ।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

(भगवद्गीता 2.27)

अर्थात, पदार्थ आदि द्रव्य हमेशा बने रहने वाले नहीं हैं, परन्तु, इनका समूल नाश हमेशा के लिए असंभव है, यह प्रकृति का एक नियम है। अर्थात प्रकृति में हमेशा के लिए कुछ भी नष्ट नहीं होता, केवल रूप बदलने की क्रियाए चलती रहती है.

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति

"सृष्टि से पहले सत् नहीं था, असत् भी नहीं अन्तरिक्ष भी नहीं, आकाश भी नहीं था। छिपा था क्या कहाँ, किसने देखा था उस पल तो अगम, अटल जल भी कहाँ था।"

ऋग्वेद (10:129) से सृष्टि सृजन की यह श्रुति लगभग पाँच हजार वर्ष पुरानी है, जो आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी इसे रचित करते समय थी। सृष्टि की उत्पत्ति आज भी एक रहस्य है। सृष्टि के पहले क्या था? इसकी रचना किसने, कब और क्यों की? ऐसा क्या हुआ जिससे इस सृष्टि का निर्माण हुआ? अनेकों अनसुलझे प्रश्न हैं जिनका एक निश्चित उत्तर किसी के पास नहीं है। कुछ सिद्धान्त है जो कुछ प्रश्नों का उत्तर देते है और कुछ नये प्रश्न खड़े करते है। सभी प्रश्नों के उत्तर देने वाला सिद्धान्त अभी तक सामने नहीं आया है।

सबसे ज्यादा मान्यता प्राप्त सिद्धान्त है महाविस्फोट सिद्धान्त (The Bing Bang Theory)। आधुनिक विज्ञान अभी सृष्टि की प्रक्रिया की व्याख्या करने में असमर्थ है। बिग बैंग थ्योरी और स्टडी स्टेट थ्योरी में कई खामियाँ हैं। वेद, में सृष्टि के बारे क्या कहते हैं। सृष्टि के कई पहलू हैं।

श्रीमद्भागवतम् के अध्याय 2.5 और 3.10 में सृष्टि की प्रक्रिया का वर्णन है। कि ब्रह्मांड अनादि है, इसका न तो आदि है न अन्त। महाविस्फोट का सिद्धान्त सबसे ज्यादा मान्य सिद्धान्त है लेकिन सभी वैज्ञानिक इससे सहमत नहीं हैं ।

विज्ञान में आज हम इसे दूसरे शब्दों में पदार्थ और ऊर्जा की सम्मिलित अविनाशिता के सिद्धान्त से जानते हैं। किन्तु, स्मरण रहे, इस नियम के अन्तर्गत भी ऊर्जा से पदार्थ या पदार्थ से ऊर्जा बनाने (निकलने) की क्रियाए चलती रहेंगी। प्राचीन ग्रन्थों की श्रृंखला टूट जाने के कारण केवल लोकप्रिय साहित्य के बचे खुचे ग्रंथों तक ही हमारी पहुँच है। अतः हम कुछ प्रमुख ग्रंथों न्याय एवं वैशेषिक दर्शन, रामायण और महाभारत महाकाव्य (भगवद्-गीता), अध्यात्म रामायण, ईशादि तेरह उपनिषद् (शंकर भाष्य आधारित), इत्यादि से इसे जानने का प्रयत्न करें।

***

महावीर मन्दिर समाचार

मन्दिर समाचार

(सितम्बर, 2023ई.)

महावीर मन्दिर में कृष्ण जन्माष्टमी

गुरुवार को महावीर मन्दिर में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का आयोजन भक्तिपूर्ण माहौल में हुआ। मन्दिर के दूसरे तल्ले पर धनुर्धर अर्जुन संग विराजमान भगवान श्रीकृष्ण की प्रतिमा के समक्ष संध्या 7 बजे से भजन-कीर्तन के साथ जन्माष्टमी आयोजन की शुरुआत हुई। गजेन्द्र महाराज की मंडली ने ढोलक-झाल-मंजीरे के साथ भजन गायन किया। गजेन्द्र महाराज ने भगवान श्री कृष्ण के अवतरण की कथा भी सुनाई। किस प्रकार कंस के अत्याचारों के बीच कारागार में तारणहार भगवान श्रीकृष्ण ने देवकी-वसुदेव की आठवीं संतान के रूप में जन्म लिया, इसकी मार्मिक कथा सुन भक्त भावविभोर हो उठे। भजन मंडली द्वारा निर्बल के प्राण पुकार रहे, जगदीश हरे-जगदीश हरे...जैसे कई भजनों की संगीतमय प्रस्तुति से वहाँ उपस्थित श्रद्धालु भक्तिसागर में गोता लगाते रहे। महावीर मन्दिर की पत्रिका धर्मायण के संपादक पंडित भवनाथ झा की देखरेख में रात्रि साढ़े दस बजे से भागवत पुराण, गीता के पाठ के साथ-साथ वेद स्तुति की गई। गीता के एकादश अध्याय के सस्वर पाठ के समय महाभारत काल में कुरुक्षेत्र का दृश्य जीवंत हो उठा। पाठ के दौरान जब धनुर्धर अर्जुन ने वासुदेव श्रीकृष्ण के विराट रूप का दर्शन करते हुए उनकी स्तुति की तो वहाँ उपस्थित भक्त भाव-विभोर हो गये। रात्रि 11.45 बजे मन्दिर के पुजारियों ने भगवान को भोग लगाया। मध्य रात्रि ठीक 12 बजे अजन्मा भगवान विष्णु अवतार श्रीकृष्ण के जन्म की वृहत् आरती हुई। आखिर में भक्तों के बीच वृन्दावन-मथुरा की तर्ज पर धनिया से बने पंजीरी और शीतल प्रसाद का वितरण किया गया। महावीर मन्दिर में कृष्ण जन्माष्टमी के इस आयोजन में बड़ी संख्या में श्रद्धालु शामिल हुए।

महावीर मन्दिर में विघ्नहर्ता का विशेष पूजन

पटना के प्रसिद्ध महावीर मन्दिर में गणपति के अवतरण का त्योहार मनाया गया। मंगलवार को गणेश चतुर्थी के दिन सुबह महावीर मन्दिर के दक्षिणी भाग में स्थित भगवान गणेश की प्रतिमा के समक्ष पूजन संपन्न हुआ। महावीर मन्दिर के प्रधान पुरोहित पंडित गजानन जोशी की देखरेख में गणेश पूजन हुआ। जजमान की भूमिका में महावीर मन्दिर के पुरोहित माधव उपाध्याय थे। महाराष्ट्र के रहनेवाले पंडित गजानन जोशी ने बताया कि गणेश जी का अवतरण माता पार्वती की मैल से माना गया है। भाद्रपद महीने के शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि को गणेश भगवान का अवतरण हुआ था। इस तिथि को गणेश चतुर्थी के रूप में मनाया जाता है। पिता देवों के देव भगवान शंकर और माता पार्वती से प्रथम पूज्य का आशीर्वाद इन्हें प्राप्त है। कोई भी शुभ कार्य की शुरुआत गणेश पूजन से ही होता है। कहा जाता है कि इन्होंने संसार की परिक्रमा के लिए कहे जाने पर माता-पिता की परिक्रमा कर उसे संसार की परिक्रमा के जैसा बताया। पंडित गजानन जोशी ने बताया कि माता-पिता के प्रति समर्पण भाव, अनुशासन, बुद्धिमत्ता, एकाग्रता जैसे गुणों वाले गणपति को एकदन्त भी कहा जाता है। किसी भी मनुष्य में गणेश जी के इन गुणों का कुछ अंश भी आ जाए तो वह व्यक्ति सफलता के शिखर पर पहुँच सकता है। किसी भी कार्य में बाधा होने पर गणेश भगवान की पूजा-अर्चना से लाभ होता है। भालचंद्र, लंबोदर, गजानन, सुमुख आदि नामों से भी इनकी वंदना की जाती है। महावीर मन्दिर में गणेश पूजन के बाद आरती की गई। अन्त में वहाँ उपस्थित भक्तों के बीच प्रसाद का वितरण किया गया।

- महावीर मन्दिर के जनसंपर्क अधिकारी श्री विवेक विकास की कमल से

व्रत-पर्व

आश्विन, 2080 वि. सं. (30 सितम्बर-28 अक्टूबर, 2023ई.)

पं. मुक्ति कुमार झा, ज्यौतिष परामर्शदाता, महावीर ज्योतिष मण्डप, महावीर मन्दिर, पटना

1. पितृपक्ष (महालयारम्भ) की प्रतिपदा तिथि दि. 30 अक्टूबर
2. पितृपक्ष का तर्पण तथा पार्वण दि. 14 अक्टूबर तक चलेगा।
3. श्रीगणेश चतुर्थी व्रत, दि. 3 अक्टूबर, 2023 ई.
4. जीमूतवाहन व्रत से पूर्व ओठगन दि. 5 अक्टूबर, उदय से पहले। जीमूतवाहन व्रत से पूर्व सप्तमी तिथि में विशेष भोजन का विधान है। यह ओठगन रात्रि के अन्त में होगा।
5. जीमूतवाहन व्रत जिउतिया, दि. 6 अक्टूबर, 2023 ई.
6. श्रीमहालक्ष्मीव्रत, आश्विन कृष्ण सप्तमी उपरान्त अष्टमी, 7 अक्टूबर, 2023 ई.
7. जीमूतवाहन व्रत पारणा, दि. 7 अक्टूबर को दिन में 10.30 बजे के बाद
8. मातृनवमी- आश्विन कृष्ण नवमी, दिनाक 7 अक्टूबर, 2023ई. इस दिन विशेष रूप से दिवंगत पूर्वज महिलाओं के निमित्त पार्वण तथा तर्पण किया जाता है।
9. इन्दिरा एकादशी व्रत, आश्विन कृष्ण एकादशी दि. 10 अक्टूबर, 2023 ई.
10. प्रदोष त्रयोदशी व्रत, आश्विन कृष्ण त्रयोदशी दि. 12 अक्टूबर, 2023ई.
11. प्रदोष चतुर्दशी व्रत, आश्विन कृष्ण चतुर्दशी दि. 13 अक्टूबर, 2023 ई.
12. महालया, आश्विन अमावस्या, दि. 14 अक्टूबर, 2023 ई.
13. शारदीय नवरात्र आरम्भ, कलशस्थापन, आश्विन शुक्ल प्रतिपदा, दि. 15 अक्टूबर, 2023 ई.,
14. रेमन्तपूजा आश्विन शुक्ल द्वितीया, दि. 16अक्टूबर, 2023 ई.
15. श्रीगणेश चतुर्थी व्रत आश्विन शुक्ल चतुर्थी, दि. 18 अक्टूबर, 2023ई.
16. बिल्वाभिमन्त्रणम् (बेलनोती), आश्विन शुक्ल षष्ठी, दि. 20 अक्टूबर 2023 ई.
17. पत्रिका प्रवेश, देवी का पट खुलने का दिन, आश्विन शुक्ल सप्तमी, दि. 21 अक्टूबर 2022 ई.
18. महाष्टमी निशापूजा, (अर्धरात्रिकालिक), आश्विन शुक्ल अष्टमी, दि. 21 अक्टूबर 2023 ई.
19. महाष्टमी व्रत आश्विन शुक्ल अष्टमी (उदयकालिक), दि. 22 अक्टूबर 2023 ई.
20. महानवमी व्रतं आश्विन शुक्ल नवमी (उदयकालिक), दि. 23 अक्टूबर 2023 ई.
21. विजया दशमी, आश्विन शुक्ल दशमी, दि. 24 अक्टूबर, 2023 ई.
22. एकादशी व्रत, पाशांकुशा एकादशी, आश्विन शुक्ल एकादशी, दि. 25 अक्टूबर 2023 ई.
23. प्रदोष त्रयोदशी व्रत, आश्विन शुक्ल त्रयोदशी दि. 26 अक्टूबर 2023 ई.
24. प्रदोष चतुर्दशी व्रत, आश्विन शुक्ल चतुर्दशी दि. 27अक्टूबर 2023 ई.
25. कोजागरा, लक्ष्मीपूजा, महर्षि वाल्मीकि जयन्ती, पूर्णिमा व्रत, आश्विन पूर्णिमा, दि. 28 अक्टूबर 2023 ई.

***

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य– 'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय' इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। 'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान' प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तफ़ों को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***
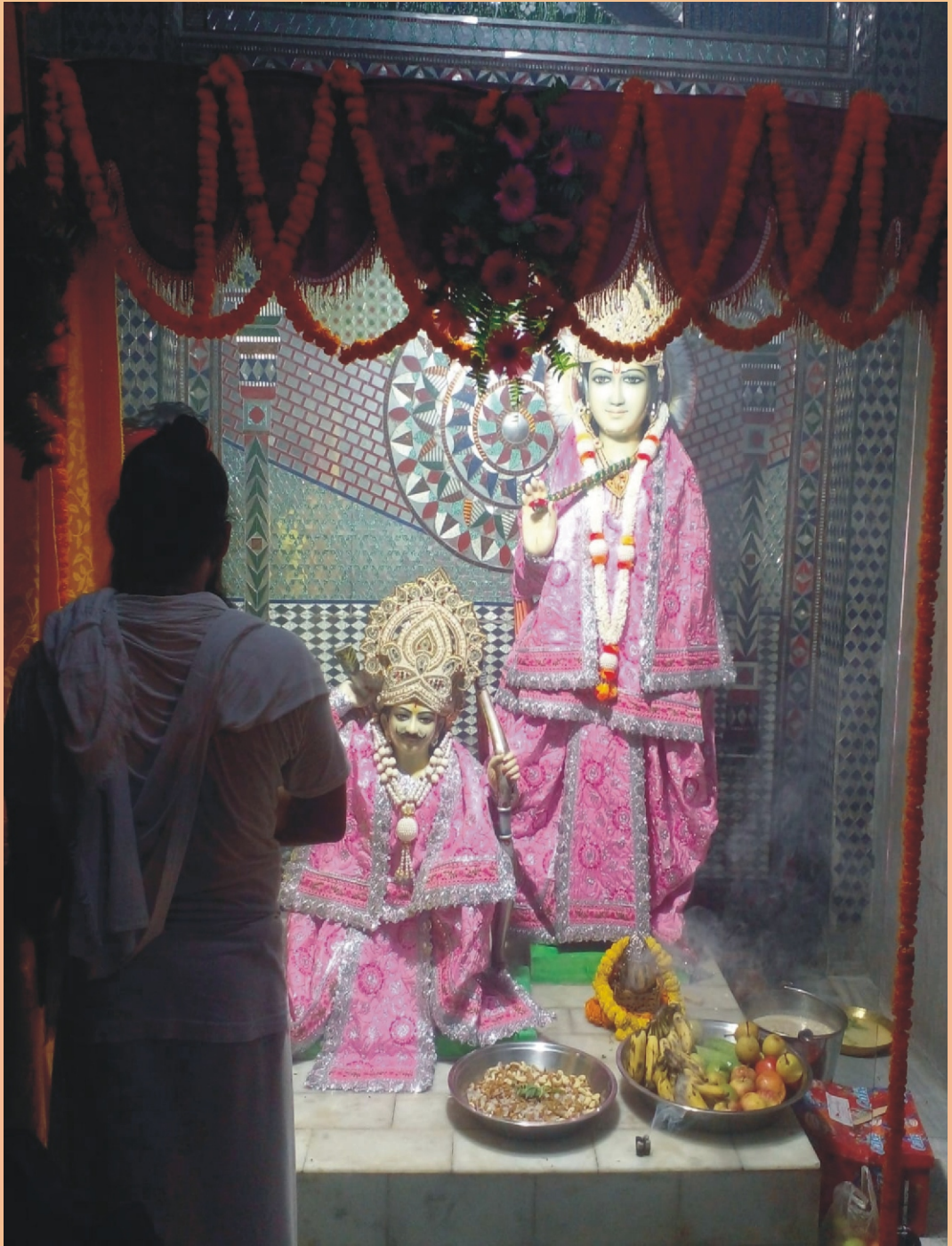
श्रीकृष्णजन्माष्टमी के पावन अवसर पर महावीर मन्दिर में स्थापित
नर-नारायण की प्रतिमाओं की भव्य झाँकी

पत्रिका-पंजीयन सं. 52257/90

श्री महावीर स्थान न्यास समिति के लिए महावीर मन्दिर, पटना- 800001 से ई-पत्रिका के रूप में https://mahavirmandirpatna-org/dharmayan/ पर नि:शुल्क वितरित। सम्पादक : भवनाथ झा।